Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

करुणासागर की रचनाओं का परिचय

चतुर्थ अध्याय

करुणासागर की रचनाओं का परिचय

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर हमने करुणासागर की जीवनी एवं इनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए यह देखा है कि इनका मूल उद्देश्य समाज सुधार का था और आध्यात्मिक तथा दार्शनिक गहन तथ्यों को सरल, सुबोध भाषा में सर्वजन-सुलभ बनाना था । स्पष्टत: इनकी रचनाओं में जन-भाषा और दैनन्दिन व्यवहारों में आने वाले विभिन्न उदाहरण एवं दृष्टांतों का समावेश हुआ है । इन रचनाओं में इन्हीं दृष्टांतों द्वारा गहन आध्यात्मिक दर्शन को समझाने की कोशिश की गयी है और साथ ही समाज में फैले अंध विश्वासों, कुरूढियों, कुसंस्कारों पर प्रहार करते हुए भक्तियुक्त ज्ञान की महिमा बतायी गयी है, जो परवर्ती पृष्ठों पर दिये गये विभिन्न रचनाओं के परिचय से ज्ञात होगा ।

करुणासागर की कुल 18 रचनाएँ उपलब्ध हैं और ये सभी रचनाएँ प्रधान गद्दी सारसा तथा करुणासागर मंदिर डभरा से प्रकाशित हुई हैं । इन दोनों स्थलों पर इन सभी ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ भी सुरक्षित हैं । शोधकर्ता ने दोनों स्थलों पर जाकर हस्तलिखित प्रतियों एवं प्रकाशित प्रतियों को तुलनात्मक ढंग से देखने का भी प्रयत्न किया है और किसी प्रकार का अंतर न पाकर संदर्भों एवं उद्धरणों में प्रकाशित प्रतियों का ही सहारा लिया है ।

इस संबंध में यहाँ पर दो तीन बातों का विशेष उल्लेख आवश्यक है । प्रथम तो यह कि करुणासागर प्रवचन करते थे और उनके दोनों लिपिक - अंबईदास वल्लवदास पटेल तथा छोटम - उनकी वाणीको लिपिबद्ध करते जाते थे । तदपश्चात् गुरु के आदेशानुसार ग्रंथों का नामकरण भी किया जाता था । द्वितीयत: ये ग्रंथ विभिन्न ` गुटको ` में संकलित हैं । कभी-कभी एक से अधिक ग्रंथों की इन विभिन्न गुटको में पुनरावृत्ति भी हुई है । तृतीयत: इन गुटकों का संकलन विभिन्न संवतों में हुआ है, अर्थात् एक `गुटका ` किसी एक संवत का है,

तो दूसरा किसी अन्य संवत का । सबसे प्राचीन संकलन सं. 1919 वि. का प्राप्य है । वि. सं. 1923, 1925, 1928, 1929, 1930 में भी मूल गुटकों की प्रतियाँ की गई हैं । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्रण के अभाव में करुणा-सागर की वाणी भक्तों में प्रचलित हो और विभिन्न स्थलों पर उनकी वाणी उपलब्ध हो, इस हेतु विभिन्न संवतों में मूल ग्रंथों की विभिन्न प्रतियाँ की गयी हों और इसी कारण पुनरावृत्ति भी हो गयी हो ।

एक बात का और उल्लेख कर देना आवश्यक है कि संकलित प्रकाशित ग्रंथों का नामकरण व्यवस्थापकों एवं संपादकों ने सांप्रदायिक मान्यता के आधार पर किया है और साथ ही एक ग्रंथ में करुणासागर की कुछ मूल रचनाएँ मूल नामों के साथ संकलित हैं ।

यहाँ पर हम कुछ मूल ग्रंथों [हस्तलिखित प्रतियों] का आरंभ और अंत प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि हो सके ।

सकृत चिंतामणि - [डमरा मंदिर में प्राप्य]

प्रारंभ - श्री गणेशाय नम ।। श्री गुरुभ्योनम ।। अथ संत आचारज वरंनन ग्रंथ आरंभ ।। ॐ परम सकृत सांमृत पत ।। नीज कैवल करुणेस ।। एक अभंड स्वराज जेहुनके ।।

अंत - दरस परस करंन नका रंनु ।।
जेहिंजीनसे जम जेही ।। केहें करुणासागर करुणाकर ।। सुनीयो सकल सबेही ।। 28 [इति श्री सकृत चंतामणी ग्रंथ संपूर्ण ।। समापते ।। श्री माहाराज करुणासागर के ग्रंथ संमपूरण ।। लीखते साल 1919 ना जेठ मास सुद पुन्यमे ।।]

विशेष - कोष्ठकवाला अंश लाल अक्षरों में लिखा गया है । हस्ताक्षर वही है ।

इसी ग्रंथ को वि. सं. 1923 में भी लिखा गया है, जो सारसा मंदिर में उपलब्ध है । तुलनात्मक दृष्टि हेतु प्रारंभ -अंत प्रस्तुत किया जा रहा है -

प्रारंभ - श्री गणेशाय नमः ।। अथ ग्रंथ सत आचरज करनन ।। अथ श्री सकृत चंतामणी ग्रंथ आरंभः ।। प्रथम भव उतपनको अंग ।।

अंत - दरस परस करनन कारण कृत । जेहीजीनसे जमजेही । केहे करुणासागर करुणाकर । सुनीयो सकल सबेही ।। 28 ।। अंग ।। 18 ।। ईती श्री सकृत चंतामणी ग्रंथ संमपुर्ण ।। संवत 1923 ना भादरवा सुदी । 10 । रवीवारे संपुर्ण । लेखक ।। श्री वैष्णव भक्त ।। अंबईदास वलवदास गामः उंमरेठ ज्ञाती पटेल ।।

परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु -

प्रारंभ - ॐ श्री सतगुरु श्री साहोंब कूबेर सत् छे श्री गुरुभ्यो नमः ।। अथ परम सीद्धांत प्रणव कल्पतरु ग्रंथे नाम अकन्हेः अक्षर अंस अंसी ब्रंनंन ।। प्रथमत्र कृणनामा पद प्रारभ्ते ।। अथ मगलाचरंण छपंय छंद ।।]

कैवल परम सिद्धांत क्रांत्प जिनु सद चिद आनंद ।।
सांम्रत सरजंन सकल अकल बिज अंस सदित कंद ।। 1 ।।

अंत - साहेब कूवेरपति सांम्रथ ।। सिर पर सरजंनहार ।
चरन ग्रेहे जंन जेहुनके ।। प्रसत होत भवपार ।
भये ग्रंथ ईती संपूर्ण ।

विशेष- कोष्ठकवाला अंश लाल अक्षरो में लिखा गया है । हस्ताक्षर वही है । तिथि का उल्लेख नहीं है ।

अद्वैताद्वैत नरवेद चिंतामणि -

प्रारंभ - श्री सतकैवल परम गुरुभ्योनमः ।। अथः अद्वैताद्वैत नरवेद चंतामणी प्रारंभ ।।

श्री प्रथंमपुरेस सकत्रा सरजंन । आद्य सबनकी सोई ।।
जीनके सुध संकल्पे अखील कुल ।। उपजायेहु सब कोई ।। 1 ।।

अंत - सुख के सागरमा हीकक्लोला ।। करु करुणा नीध जांही ।।
केहं कुवेर कलपीत सुख कारन ईत आवन कजकाही ।। 41 ।।

ईती श्री अद्वैताद्वैत नरवेद चंतामणी ग्रंथ संपुर्ण: ।।
समाप्त संवत 1925 ना असाड सुदी 15 में संपुर्ण: ।।
समाप्त एम. के.

स्वाचार पत्रिका -
==========

आरंभ - श्री करुणासागर कृत ग्रथमं स्वचार पत्रीका लीष्यते: ।।।
श्री परमगुरु सरणां गत : जे अमारा आद्य, सकर्ता, सीधांत संबंधी संतनेमीने वृतमां नवरतवानु श्री मुखनु वचन छे . ।।

अंत - माटे आ स्वचार पत्रीका सीखे सांभले ने संभलावे ने पाले तेहेने कैवल पदनी प्राप्ती थाय ।।
ईती श्री स्वचार पत्रीकानो सतनेमव्रत बोध ग्रंथ संपुर्ण: ।। समाप्त सं. 1928 । ना आसो सुदी । 4 । ने रवीवारे संपुर्ण: ।।
समाप्त: ।। छु ।। छु ।। छु ।।

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों पर कहा गया है कि इन ग्रंथों के लिपिक दो व्यक्ति थे । अत: कुछ ग्रंथों में हस्ताक्षर भिन्न पाये जाते हैं । ज्यादातर ग्रंथों को अंबईदास वल्लवदास पटेल ने ही लिपिबद्ध किया है । इस प्रसंग पर हिज्जे तथा शब्दों की लिखावट संबंधी तुलना प्रस्तुत करना प्रासंगिक ही होगा ।

महामणि बोध - प्रति सं. 1919 वि.
==========

सांमिनारायएय निज नारएा ।। सुनातय अनुसार ।।
महिपतणां अरु पगरणां ।। एतना बीचे फेरफार ।। । ।।

महामणि बोध - प्रति सं. 1929 वि.
==========

स्वांमीनारायएा बीज नारएा ।। सुनोतय अनुसार ।।
महीपतणां ओरु पगरणां ।।
एतना बीच फेरफार ।। । ।।

अगाध बोध - प्रति सं. 1919 वि.

ॐ । प्रथंम प्रणामं धाम जीवु सकल परापर सरल जाहा कि सक्त व्यक्त ब्रह्मांड सकल घर ।

अगाध बोध - प्रति सं. 1929 वि.

ॐ प्रथंम परणामं धामं जीवु सकल परापर ।।
सरल जाहाकी सक्तव्यक्त ब्रह्मांड सकल घर ।। 1 ।।

विश्वबोध चोसरा - प्रति सं. 1919 वि.

अरबिंगा अगन्यामं भरेला ।। बीषसिष सुधी बघरा ।
ढोहोर सरीषा ध्यांन घडीबी ।। पूवे बधारे ढगरा ।। 2 ।।
नगरपतिके नात्य पटलीया ।।

विश्वबोध चोसरा - प्रति सं. 1929 वि.

अरवींगा अज्ञांन भरेला ।। बीखसीष सुधी न घरा ।।
ढोहोर सरीषा धांन घडीबी । पुग वधारे ढगरा ।। 2 ।। नगरपती के नात्य पटलीया ।

सारसा के मंदिर में ' गुटका ' के रूप में जो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, उनमें सबसे प्राचीन प्रति वि. सं. 1923 की है । इस ' गुटका ' में रगैनी पद, ज्ञानभक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ, तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि, सक्त चिंतामणि, अद्वैताद्वैत नरवेद चिंतामणि, हंसतालेवा, विज्ञान सक्तमणि दीप, प्रणव सिद्धांत प्रणव कल्पतरु, अगाध बोध, कैवल विलास, विश्व बोध चोसरा, सक्ता भाष्य, पंचीकरण - ये ग्रंथ संकलित हैं ।

इसी प्रकार डमरा के मंदिर में उपलब्ध ' गुटका ' में सक्त चिंतामणि, स्वाचार पत्रिका, अद्वैताद्वैत नरवेद चिंतामणि, प्रणव सिद्धांत, प्रणव कल्पतरु, हंसतालेवा, विज्ञान सक्त मणिदीप, विश्वबोध चोसरा, महा-मणि बोध, ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण नामक ग्रंथ संकलित हैं । यह ' गुटका '

वि. सं. 1925 और 1926 के मध्य लिखा गया है ।

संवत 1926 ना मागसर सुदी ।। 4 ।। ने वार मंगलवार समाप्त: ।। लेखक ।। वैष्णव ।। अंबईदास वल्लवदास गांम: ऊंमरेठ वाघनाथ माहादेव आगल ज्ञाति लेव्या पाटीदार सवै संतोने जे सत कैवलं वांचते ।। संपुर्ण ।।

श्री रस्तु: ।।

अब हम विभिन्न रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे ।

अगाध बोध

अगाध बोध ग्रंथ में श्री करुणासागर 87 अंगों में अपनी अगाधगति का स्वरूप समझाते हैं । ग्रंथ के प्रारंभ में शुद्ध ओंकार स्वरूप परमपति को अभिवादन स्तुति और प्रणाम करते हुए वे कहते हैं कि आपने ही इस ब्रह्मांड को उत्पन्न और धारण किया है, और आप ही इसमें आनंद स्वरूप में विलसित हैं, तथापि इन सबसे पर भी हैं । अत: सचराचर ब्रह्म के भी पति कैवल स्वरूप, मैं आपको प्रति पल प्रणाम करता हूँ । इस मंगलाचरण के पश्चात्, इस ग्रंथ में जीवात्मा तथा ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों की उत्पत्ति, गति और लय का वर्णन किया गया है । इसी कारण इस ग्रंथ का नामकरण ' अगाध बोध ' किया गया है । इस ग्रंथ का प्रत्येक अंग शुभ और सारयुक्त है, और इन अंगों में अर्थबोध भी है जिससे जीवात्मा का संशय नष्ट होकर उसे भव चक्र से मुक्ति मिल जाती है ।

प्रथम अंग में इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि ' सोहंगरूप अद्वैत ब्रह्म से त्रिगुणात्मक जगत के द्वैत विलास का प्रादुर्भाव हुआ है । परम पति को प्राप्त करने के लिए आत्मानुभव का यह मार्ग बहुत टेढा है ।

द्वितीय अंग में जीवात्माओं की त्रिविध कोटियों के एक दूसरे से स्वतंत्र और भिन्न प्रकार के वर्तन की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि जीव ईश्वर और जगत इन सभी कोटियों का स्वरूप और संबंध भ्रांतिमय है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश और शेष एवं शक्ति इन सभी देवताओं का व्यवहार जीव

दशामूलक ही है । बलि राजा के समक्ष वामन स्वरूप धारण करनेवाले श्री विष्णु और सीता वियोग सहन करनेवाले श्री राम आदि के चारित्र्य जीववाद से भिन्न नहीं हैं । श्री करुणासागर कहते हैं कि यह तो जीव का व्यवहार है, इस पर अधिक विश्वास कैसे रखा जाय ।

चतुर्थ अंग में पुराणों पर आधारित ईश्वर स्वरूप पर व्यंग्य करते हुए कहा गया है कि कभी तो शिव अपने को विष्णु का दास मानते हैं और कभी विष्णु शिव की उपासना करते दिखाए गये हैं । अतः ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी ` जीव ` ही हैं और ज्ञान से उस ` कैवल ` को प्राप्त करने के प्रयत्न में हैं ।

इन सब उदाहरणों के माध्यम से श्री करुणासागर यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि इस जीवात्मा और ` उस जीवात्मा ` में कोई मौलिक अंतर नहीं है । ` खलु इदं ब्रह्म ` और ` अहं ब्रह्मास्मि ` का अर्थ स्पष्ट करते हुए यह कहा गया है कि अखा, कबीर आदि ने इसी स्वरूप को प्राप्त किया था । इन संतों का मार्ग वेदों की मर्यादा से मुक्त एवं निराला है और यही मार्ग समर्थ करुणासागर का भी है ।

सातवे अंग में यह बताया गया है कि चार वेदों के अध्ययन-चिंतन-मंथन के बाद विभिन्न ऋषियों ने षट शास्त्रों की रचना की, और कहा गया है कि इन सब ने नाम-रूप की ही चर्चा की है, जो वास्तविक रूप में माया-युक्त ही है ।

सोलहवे अंग में सद्गुरु के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण इन चारों देहों का तत्व और अधिष्ठान देवादि की चर्चा सिर्फ सच्चे गुरु ही कर सकते हैं । वास्तव में समस्त पिंड और ब्रह्मांड में अनुस्यूत परब्रह्म तत्त्व निरालंब और अद्भुत है । इस स्थिति का -इस तत्त्व का स्वानुभव करानेवाला ज्ञानी गुरु ही है ।

इक्कीसवे अंग में वाल्मीकि, नारद और वसिष्ठ की ही पंक्ति में अपने नाम का निर्देश करते हुए श्री करुणासागर कहते हैं कि उत्तम कुल में जन्म

होना आवश्यक नहीं है । जो ब्रह्मदर्शी हैं वही ब्राह्मण हैं ।

तेईसवे अंग में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है कि स्थावर जंगम आदि सर्व लोकों की उत्पत्ति एक अद्वैत सनातन परब्रह्म में से ही हुई है । इसके साथ ही गीता के मंतव्य को दोहराते हुए यह भी कहा गया है कि आद्य सनातन ब्रह्म स्वरूप ज्ञानी पुरुष ही है और ऐसा ज्ञानी उस ब्रह्म से भिन्न स्थितिवाला नहीं है ।

छब्बीसवे अंग में कैवल वेत्ता-सकर्ता पुरुष और अन्य देवतादि पुरुषों के अंतर की चर्चा करते हुए श्री करुणासागर कहते हैं कि जैसे आक और पलास आदि वनस्पति पर चंदन का पट लग जाने से क्षण के लिए उनकी सुगंधि में चंदन का भ्रम होने लगता है पर चंदन आक से अलग ही है । कैवल कर्ता और अन्य देवताओं का संबंध भी चंदन और आक की तरह ही है । [1]

उनतीसवे अंग में इस तथ्य की विस्तृत चर्चा की गयी है कि मनुष्य देहासक्त और मोहवश अनेक प्रकार का अभिनय करता है, और इस अभिनय के पीछे स्त्री भोग विलास को कारणभूत माना गया है ।

निर्गुण-सगुण तथा ब्रह्म के अभिन्नत्व की चर्चा करते हुए कहा गया है कि मूल से ही शाखाएं निकलती हैं और नाम भी अलग पड़ जाता है, लेकिन शाखा वास्तव में मूल से भिन्न नहीं है । शक्कर का बना हुआ श्रीफल तत्त्व में शक्कर ही है, किन्तु आकार के कारण नाम भिन्न हो जाता है । सत् कैवल-कर्ता और कैवल वेत्ता दोनों मूलतः एक ही हैं । जब सत् कैवल कर्ता अपने चैतन्य स्वरूप का विस्तार करता है तो वह सृष्टिकर्ता कहलाता है, और जब उस रूप को समेट लेता है, तो वह मात्र सत् कैवल रह जाता है । [2]

---

1. जेम चंदननी फोरे बास, पट बेसे ते आक पलास. 26 / 1
   . अलिपंखी वासे वलगे, मणिधर शुध चंदन जइ लगे . 26 / 2
2. पेढ नहि शाखाथी अलग, तेम कैवलने वेता सलग,
   माटे करता कैवलवेत, श्रीफल साकर देह समेत. 32 / 2
   तुलनीय- जलमें कुंभ है, कुंभमें जल है, बाहर भीतर पानी ।
   फूटा कुंभ जल जल माहीं समाना, यही तथ्य कथौ ज्ञानी ।।
   कबीर ग्रंथावली - सं. प्रो. पुष्पपालसिंह, पृ. 28,

सत कैवल के परमधाम का वर्णन करते हुए श्री करुणासागर कहते हैं कि जहाँ अनुभव और बुद्धि नहीं पहुँच पाती, इसका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ? फिर भी अकर्ता कर्ता दोनों पक्षों से रहित सकर्ता सत् कैवल का स्थान, वह परम दिव्य तख्त है जिसका आदि भी नहीं है, और अंत भी नहीं है । [1] अनादि अद्वैत स्वरूप इस दिव्य पद को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु की कृपा अनिवार्य है ।

इकतालीसवे अंग से लेकर सत्तरवे अंग तक विभिन्न लोकों [धामों] का वर्णन किया गया है । इन धामों में किन-किन संत महात्माओं का निवास है और श्री करुणासागर इन संत महात्माओं से मिलते हुए जंबुद्वीप के भरतखंड में किस प्रकार अवतरित हुए इसका लेखा जोखा भी प्रस्तुत किया गया है । विभिन्न धामों और विभिन्न खंडों का क्या विस्तार है, वहाँ किस प्रकार के जीव निवास करते हैं, वहाँ की विशेषताएं क्या हैं आदि की सविस्तार चर्चा की गयी है ।

पुष्करद्वीप, सागद्वीप, कौसकद्वीप, कुसालक द्वीप, सालम द्वीप, पालकी द्वीप और जंबुद्वीप ये सात द्वीप हैं, सूर्यलोक , चन्द्रलोक, तारा मंडल, शुक्र लोक, बुध, मंगल , गुरु , शनि , सप्तर्षि लोक, ध्रुवलोक, महर लोक, जन लोक, तपस लोक, सत लोक, वैकुंठ लोक, ब्रह्म लोक , कैलास धाम , शक्ति धाम, निरंजन धाम या कैवल धाम - ये विभिन्न धाम हैं यही निरंजन

---

1. तुलनीय -

अगम अगोचर गमि नहि, तहाँ जगमगै ज्योति ।
जहाँ कबीरा बंदगी, [तहाँ] पाप पुन्य नहीं छोति ।

कबीर ग्रंथावली, पृ. 133.
सं. प्रो. पुष्पपाल सिंह.

धाम या कैवल धाम भक्तों का इष्ट है । [1]

इसके पश्चात् इकहत्तरवे अंग में श्री करुणासागर अपने अयोनिज ' अवतार ' के संबंध में बताते हुए कहते हैं कि जब वे जंबुद्वीप में एक बालक के रूप में आये तो एक जंगल के किनारे के तालाब के पास एक स्त्री अपने छोटे बच्चे को सुलाकर पानी पीने गयी । जब तक वह लौटे तब तक उस बालक को हिंसक पशु खा चुका था । [2] वह स्त्री रोने लगी इतने में उसकी नज़र उस ' दिव्य बालक ' पर गई । करुणासागर कहते हैं कि मैंने उसे सारी स्थिति समझा दी और कहा कि इस रहस्य को प्रकट मत करना । इस प्रकार वह स्त्री [हेतबाई] मुझे घर ले आयी और वहीं मेरा लालन-पालन हुआ । मेरे उस

---

1. लख जोजन अवनी तेसुरा, द्वे लख जोजन चंद सफुरा,
   त्रीय लख जोजन तीन पर तारा, तापर द्वे लख सुकर सारा. 70/9
   सो गड लोक अवन्य जीत दुरी, तेतने पर सक्ति जुग मुरी,
   सक्ति धाम अवनी बीच दुरा, तेतन्ये पर निरंजन बीज सुरा. 70/16
   एही परकार अधिक एक एक ही, सबके सिर कैवलपद सेहही,
   सौ कैवल करता सरवनके, जो हंम बरन्या धाम तेहुन के. 70/19

2. तेही जंगल एक निर तलाइ, छोडी सुत पीवन गइ माइ ,
   पुठभइ माताकी जबही, लेइ गये बालक नाहर तबही. 71/2
   हेतबाइ रघुवर जीन नामा , क्षत्री कुल हंम कीया विरामा,
   पुरवसे हंम कोल बंधाये, तब बालक होय उन घर आये, 71/5
   माताकु वंनमे समजाइ, काहुसे भेद दीयो नहि ताइ ,
   गुप्त रहे येतने दीन जबही, प्रगट पोकार कहत हंम अबही. 71/6
   ते ही खंडे देखो हंम आये, नगर सारसा धाम रचाये,
   बरन अठार बसे जांहां सारी, आनंद भये सबही नरनारी . 71/10

पिता का नाम ` रघुवर ` था. वे कहते हैं कि मैंने उस दम्पति को अगले जन्म में वचन दिया था कि मैं तुम्हारे यहाँ ` बालक ` रूप में अवतरित होऊँगा । इस वचन के कारण ही मुझे यहाँ अवतरित होना पड़ा । इस प्रकार मैं जंबुद्वीप के निवासियों के आर्त को हरने हेतु ` अयोनिज ` रूप में अवतरित हुआ और ` सारसा ` गाँव में आकर निवास करने लगा ।

87 वे अंग में उनका अंतिम उपदेश दिया गया है । ` निशदिन निजपद में स्थित रहना ` ऐसा कहकर वे अपने स्थूल शरीर का त्याग करके निज कैवल पद में विलीन हो गये ।[1]

स्वाचार पत्रिका

स्वाचार पत्रिका ग्रंथ में प्रधानतः गद्य एवं बीच बीच में साखियों के द्वारा सामान्य रूप में समाज और विशेष रूप में सम्प्रदायगत आचरण का मार्ग बताया गया है । इसमें कुल छः अंग हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वजन सुलभ मार्ग बताने और अपने ` कायम पंथ` के साधु- महात्माओं को नियंत्रित करने के उद्देश्य से करुणासागर ने इस ग्रंथ की रचना की है, जो उक्त ग्रंथ के नाम से भी स्पष्ट है ।

प्रारंभ में उन्होंने अपने संप्रदाय के साधुओं को सुवर्णादि भौतिक पदार्थों को मृतिका (मिट्टी) समझकर उन पर दृष्टि न डालने का उपदेश दिया है । जैसे ईश्वर के ध्यान से तद्रूप हुआ जाता है, वैसे ही धन या भौतिक पदार्थों के चिंतन से मन उन्हीं में लीन हो जाता है, जिससे निजकर्ता के ध्यान में अवरोध उत्पन्न होता है, इसलिए वे देह की रक्षा के लिए आवश्यक एवं रजोगुण रहित वस्त्रादि ग्रहण करने के अतिरिक्त किसी भी मायावी चीज को ग्रहण नहीं करने का अनुरोध करते हैं ।

---

1. तुम दलगीर करो मत कोइ, रहो नीजपद नीसदीन चीत प्रोइ,
अब दो दीन तुम कर हो वीलासी, तंन छुटे फेरी नीज पद पासी. 87/3
जेतने लोक ओलांगी आये ते, फेर गये ओलंगीही ते ते,
कुल करता कैवल नीज धामु,हंस रूप धरी भये वीरामु.87/7

बाद के तीन अंगो में स्त्री संबंध, चोरी, प्रपंच आदि के त्याग की बातें बताई गई हैं । धन से भी कई अधिक गुना आकर्षण स्त्रियों में है । धन तो मूक है, किंतु स्त्री तो मीठी वाणी से भी और अधिक आकर्षित करती है । अतः साधुओं को चाहिए कि वे इन्द्रिय-दमन द्वारा उस आकर्षण का त्याग करें । करुणासागर निजकर्ता कैवल के अंशरूप हैं, और जीवात्माओं के कल्याण के लिए चोरी और प्रपंच का त्याग करने का उपदेश देते हैं ।

पाँचवे अंग में करुणासागर ने अपनी विभिन्न विभूतियों की चर्चा करते हुए कहा है कि वे इन विभूतियों से युक्त होकर अवतरित हुए हैं, और कैवल बोध का उपदेश देकर जगत का कल्याण चाहते हैं । कुल सोलह विभूतियों [सकर्ता संबंधी ज्ञान , न्याय सहित निज कर्ता का अनुभव, धीरज, सहन-शक्ति , समाजित शक्ति, अभयशक्ति, योगकला, आकृतिशक्ति, सहोंम शक्ति, नरवेद, एकादशमी प्रभाव प्रकाश, समृति प्रारब्ध, निर्लेप महद, दृढ, अर्ध-पाद-पूजा नीरार्जव-ऐश्वर्य] का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि ये विभूतियाँ उनमें समाहित हैं और सभी को इसका अनुकरण करना चाहिए ।

स्वाचार पत्रिका में साधु समाज का रहन सहन व्रत नियम आदि की विशेष जानकारी दी गयी है ।

ग्रंथ के अंत में श्री करुणासागर कहते हैं कि स्वाचार पत्रिका के नियमानुसार चलने से देह के असह्य दुःखों का नाश होता है और कैवलपति के स्पर्श से भवचक्र के बंधन से जीवात्मा मुक्त हो जाता है ।

परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु

परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु ग्रंथ में कुल आठ केतु हैं । इसके मंगलाचरण में करुणासागर अपने कैवल सिद्धांत को ही जगत भर के समस्त सिद्धांतों से सर्वोपरि प्रतिपादित करते हैं । सत्, चित् और आनंदरूप तत्त्व कैवल ही है । [1]

---

1. कैवल परम सिद्धांत क्रांत, जीवुं सद चिद आनंद, मंगलाचरण 1.

`नाम निराकरण` नामक प्रथम केतु में नाम का महत्व बताया गया है । षड दर्शन, अठारह पुराण, नौ व्याकरण, छः शास्त्र, इतिहास और अनेक ग्रंथों में सिर्फ नाम पर विश्वास रखकर नाम को ही श्रेष्ठ पद दिया गया है । इसी लिए जगत भरमें सभी लोग नाम का रटन किया करते हैं ।

एक अखंड कैवल कर्ता ही सर्वत्र व्याप्त है, इससे ही अनंत अंशों का विलास हुआ है । अज, कीट आदि अगणित घाट को सचेत करने वाले कैवल कर्ता ही है । [1] इस केतु में नाम का निरूपण करते हुए नामी की स्थापना की गयी है, चूँकि नामी के बिना नाम संभव ही नहीं है । सत् चित् और आनंदरूप कंद को भी नाम का आभूषण लगा हुआ है, इससे अभेद होते हुए भी नाम-नामी में कैवल कर्ता ने अपना रूप प्रकट किया है ।

`भव बीज उत्पन्न करनन प्रणव` केतु में यह बताया गया है कि चौदह लोक के इस खेल के खयाली सकर्ता सत् कैवल का स्वरूप प्रणव तत्त्व से भिन्न है । इसी केतु में सत् कैवल के स्वरूप की चर्चा की गई है । कैवल कर्ता की इच्छा मात्र से ही पंच तत्त्व और प्राणायाम आदि की उत्पत्ति हुई है । पृथ्वी आदि पंच तत्त्वों के स्थूल शरीर में ही दस इन्द्रियाँ और मन आदि अंतःकरण के विहार का स्थान है । शरीर में अलग अलग स्थान पर निश्चित षटचक्र हैं जिनमें प्राणायाम के केन्द्र हैं । इस प्राणायाम वृक्ष में `चार-शाखाए` - परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी - हैं , और उस वृक्ष के पत्र पुष्प तथा फल के रूप में हम क्रमशः वेद के बावन अक्षर और संध्या गायत्री को पहचानते हैं । करुणासागर कहते हैं कि प्राणायाम रूप परम `चित्त` ही अनंत ब्रह्मांड का मूल कारण है । इस कारण रूप प्राणायाम से संध्या और गायत्री रूप फल के रक्षक द्विज हैं और इस फल के भोक्ता संतपुरुष हैं । [2]

---

1. अगणित घाट सचीत कीये, अज भव कीट महुर. 1/24.
2. एही तरु प्रणव परम वीत, भवकारण निजमेव,
   जीनुं फल द्वीज रछपालही, पावत संत सदेव. 2/10

इस प्रणव वृक्ष के फल का रस सिर्फ संत दशा के महापुरुषों को ही मिलता है । पुण्यदान, ब्रह्मभोजन, कर्मकांड कन्याविधि आदि बाह्याचार ही हैं । प्रणव की सच्ची उपासना करने वाले मुक्त दशा के पुरुष प्राणायम रूपी वृक्ष के फल का भक्षण करते हैं । ऐसे संत पुरुषों में वाल्मीकि, नारद, पाराशर वशिष्ठ आदि महापुरुषों का भी समावेश है ।

तृतीय केतु में श्री करुणासागर ने कहा है कि देश, काल, नगर, तीर्थ, राजा, प्रजा, पंडित, चोर, शिव ब्रह्मादि सभी का नाम अक्षर से ही पहचाना जाता है ।

चतुर्थ केतु में चौराशी लक्ष घाट की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए कहा गया है कि चौदह लोक रूप सृष्टि में दो प्रकार के विभाग हैं - जंगम और स्थावर । शरीर रूपी क्षेत्र में प्रणव वृक्ष है । अंश का निज प्रकाश प्राणायम पर केन्द्रित नहीं होने के कारण सभी सामग्री से युक्त पदार्थ शम दम रूप में निज कैवल कर्ता ने देखे । कैवल कर्ता के उमंग से ही पंचीकरण की रचना हुई है ।

करुणासागर पंचम केतु में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि सत् कैवल से उत्पन्न अंश ही प्रणव कल्प तरु में सतत सूत्ररूप व्याप्त है । इस केतु में यह बताया गया है कि अक्षर की और अक्षरों के फलरूप संध्या गायत्री की उत्पत्ति प्रणव वृक्ष से ही हुई है । प्रणव वृक्ष तत्त्व नखशिख पर्यंत पुरुष प्रकृति युक्त ऋतु से पूर्ण है, और उसीकी स्फूरणा से ही उमंग और अनंग के ऐक्य से पुष्परूप अक्षर उत्पन्न हुए हैं । जिस तरह राजा अपने महल में बगीचे की रचना करके विभिन्न प्रकार के पुष्पों को उगाता है उसी प्रकार असंख्य लोकों के राजा निज कैवल कर्ता ने सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मा के मूल स्वरूप के शरीर रूपी खेतों में सभी सामग्री से युक्त चौदह लोकों की सृष्टि की । करुणासागर जगत के जीवात्माओं को अपनी अज्ञान दशा का बोझ वहन करने का मूल कारण दिखाते हुए कहते हैं कि जीवात्मा अपना आत्मतत्त्व आप ही भूल गये हैं, और अपने अंतिम लक्ष्य के मर्म को भी नहीं जानते । इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि ये भ्रमित जीवात्मा अक्षर, प्रणव, अजपाजाप , समाधि , शमदम आदि को ही अपना लक्ष्य .....

समझ बैठे हैं ।[1]

शम दम संयमादि साधनों को अपनाने पर भी कल्पान्त तक स्व स्वरूप के ज्ञान के बिना निज कैवल कर्ता का वियोग मिटेगा नहीं । निज घर प्राप्त करने की गति संत सद्गुरु बिना प्राप्त नहीं होगी यह निर्विवाद है.[2] अनंत ब्रह्मांड में स्थित अंशरूप जीवात्मा अज्ञान रूपी स्वप्नावस्था में होने के कारण ही जन्म-जरा-मरण के चक्र में फँसे हुए हैं ।

जगत में चार प्रकार के गुरु हैं, उनकी गति की लक्षणा भी चार प्रकार की है, और इनके अंशों के तीन विभाग हैं जिसकी चर्चा करुणासागर ने ` अंशीपद सद्गुरु सिद्धांत देखावन ` नामक छठे केतु में की है ।

परोक्ष गुरु, गुरु, सद्गुरु एवं परम गुरु इन चारों गुरुओं की महिमा दिखाते हुए कहा गया है कि परमगुरु के परम उपदेश से ही अंश अंशी पद प्राप्त कर सकता है । इसी लिए परमगुरु की बराबरी कोई नहीं कर सकता । निज कैवलकर्ता सकल अंश के सर्जक है । सकलरूपी खेल अपनी खुशी से अपने अंशों के लिए किया गया है ।[3]

करुणासागर का अपर नाम ` कुवेर ` भी है । अतः अपने नाम और शरीर धारण करने के कार्य को बताते हुए वे कहते हैं कि जो अशरीरी है, और जिसे निज कर्ता का आदेश मिला है कि संसार में जाकर मेरा संदेश सुनाने में तू ` क्यों बेर ` [देर] करता है, इसी आधार पर मेरा नाम ` कुवेर `

---

1. केतेक अटकेहु प्रणवही, जपत अपंजा जाप,
   केतेक जोत निरंजन, करत समाध अलाप. 5/33
2. तबलगी भरमत उतइत, चौद तबक त्यौं जंत,
   निजघर कबहु न पावही, बीन सद्गुरु ओरु संत. 5/61
3. परम पुरुष पति कैवल, सकल अंश किरतार,
   खलक खेल जीनकी खुशी, हुंची हुलावन हार. 6/128

हुआ है । [1]

निजपति के सभी अंश विकारयुक्त होकर माया के बंधन में आ गये हैं, और अपना निजत्व भूल गये हैं । इन्हीं भ्रमित जीवात्माओं के उद्धार के लिए मुझे इस जगत में आना पड़ा है । ऐसे भ्रमित अंशों को अभय वचन देते हुए वे कहते हैं कि मेरे उपदेश या बताये हुए मार्ग से निर्लेप, निर्द्वन्द्व और हंसरूप बनकर अवश्य ही निज कर्ता कैवल को प्राप्त कर लोगे ।

सप्तम केतु में संपूर्ण ग्रंथ के शीर्षक के मर्म का उद्घाटन किया गया है । अनेक प्रकार से रूपकों के माध्यम से एक ऐसे पुरुष की कल्पना की गयी है जो अनुपमेय है । उसी पुरुष का नाम ' प्रणव कल्पतरु ' है जिसे उसी रूप में जान लेने पर भव की अज्ञानता नष्ट हो जाती है और अंश मोक्ष- जीवन मुक्ति की स्थिति में अवस्थित हो जाता है । [2]

करुणासागर इस ग्रंथ के अंत में प्रतिपादित करते हैं कि अहंग [मैं] सहित सब अंश एक ही सर्जनहार के हैं और जब तक निजपति का यह विस्तार है, तब तक ये सत मेरे बांधव हैं । [3]

करुणासागर स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान सभी ज्ञानों में श्रेष्ठ है, लेकिन ' कैवल चिंतामणि ' सर्वश्रेष्ठ है ।

---

1. परम पुरुष निज हुक्मको, तुरत धरे शीर मेर,
   कृता कीन क्यों बेर अब, जबते नाम कुवेर. 6/133.
   आयेहु अवन अचानक, अरस अगम होय सेर,
   खुदके खरे संदेशमे, क्यों करे बेर कुवेर . 6/134
2. तेही तंत तनु पुरुष के, प्रणव कल्पतरु नाम,
   भवजल भरम मीटायके, करन मोक्ष विसराम. 7/75
3. अहंग सहित सब अंशके, एकही सरजनहार,
   जबही सकल मम बंधव जहाँ लहु पति विस्तार. 8/146

सकृत चिंतामणि

सकृत चिंतामणि ग्रंथ में जगत की उत्पत्ति और इस उत्पत्ति के आशय की रसप्रद चर्चा की गई है । करुणासागर ` भव उत्पन्न अंग ` में कहते हैं कि परमकृपालु केवल कर्ता ने सर्वप्रथम आद्यशक्ति, पुरुष, तीन प्रकार के गुण, महद अग्नि के अंशरूप सूर्य, तत्पश्चात् वायु तत्त्व, षटरस, षडऋतु आदि की रचना की है । इस प्रकार करुणासागर यह सिद्ध करते हैं कि जगत की उत्पत्ति किस तरह हुई है । [1]

इस तरह इस अंग के अंत में यह बताया गया है कि अपने सकृत संकल्प से ही सर्व जीवों की उत्पत्ति केवल कर्ता ने की है । इसीलिए केवल कर्ता के अंतर में इस जगत के प्रति आनंद और प्रेम का भाव है । निजपति को जगत प्रिय है ।

` खल परिहार देखावनको अंग ` में कहा गया है कि खल पुरुष केवल कर्ता के जगतरूपी खेत में उत्पन्न होकर जीवों को पथभ्रष्ट करते हैं । संसार में खल, लंपट, ठग और ` कल्पित त्यागी ` अपने अपने व्यसन से अनित्य पदार्थ के पीछे लगे रहते हैं और इस तरह जन्म एवं मरण के चक्र में खुद फँसते हैं और अज्ञानी जीवों को फँसाते हैं । प्रस्तुत अंग के अंत में करुणासागर कहते हैं कि इस प्रपंचमय मार्ग में भक्ति , ज्ञान और वैराग्य जरा भी नहीं है । खल गुरु देते हैं कंकर और कहते हैं कि यह पारस है, जिसे सुरक्षित रखना । इस प्रकार खल गुरु युक्तिपूर्वक उपदेश देकर अज्ञानी जीवों के मन को सिर्फ बाह्य सुख देते हैं, पर उन्हें भवसागर पार नहीं करा सकते ।

केवल कर्ता ने परम विशेष गुरु को ` कायम पंथ ` के धर्म-ध्वज को लहराने के लिए आदेश दिया है, और परम पद के इच्छुक ऐसे विरल अंशों को

---

1. कृपावंत तब अगम विलोकीत, कीनेहु पवन प्रसारा,
   जीव सकल तब अचर चरनके, शान्ति करनकु सारा.
   पुनी षट रस रसके रस लेवन, देवन दीन दयालु,
   ज्ञान पान अमरत रत भोजन, पुरीत तात प्रतिपालु. 1/5,6

केवल कर्ता के सन्मुख उपस्थित करने को कहा है ।

चौथे और पाँचवे अंग में करुणासागर ने चारों युगों में होनेवाले संतों का वर्णन किया है । वे कलियुग के संतों को ठग मानते हैं ।

करुणासागर ने 'राजनीति धर्म देखावन अंग ' में कुटिल राजनीति से चलनेवाले नरपतियों की कटु आलोचना की है । वे कहते हैं कि पूर्वजन्म के तप के प्रभाव से उन्हें राजत्व और ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, इसलिए उन्हें इस जन्म में सत्य राजनीति धारण करना आवश्यक है । धर्म-गुरु और आचार्यों की कथनी एवं करनी में एकरूपता होनी चाहिए । जिस प्रकार नेत्र में रज, और घी में पानी टिक नहीं सकता, उसी प्रकार देव धर्म में प्रपंच और पाखंड टिक नहीं सकते ।

' कर्ता अकर्ता लहा देखावनको अंग ' में जगत की उत्पत्ति के सिद्धांत को समझाया गया है । निज कर्ता के संकल्प के बिना अणु मात्र भी अन्य किसी से उत्पन्न नहीं होता । आद्य शक्ति और शिव, ब्रह्मा विष्णु आदि के कर्ता निरंजन निराकार केवल तत्व ही है । इस निजकर्ता के संकल्प से ही जगत की उत्पत्ति हुई है । करुणासागर अपने अवतार का रहस्य प्रकट करते हुए कहते हैं कि इस परम सकर्ता के पद से जगत अज्ञात है, इस कर्ता के अभिप्राय को न्याय सहित दिखलाने के लिए, और सगुण-निर्गुण उभय पदों के स्पष्ट रूप दिखलाने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है ।[1]

स्व स्वरूप की अनुभूति केवल सहजभाव से होती है, और इस तरह सत् केवल की अनुभूति करने से ही अंश और अंशी भाव का मिलन होता है ।[2]

इस अंग में करुणासागर निश्चित रूप से कहते हैं कि हम सब केवल कर्ता के अंशरूप हैं । इस शरीर के अंतर्गत जो परम कारण देह अवस्था है, वहाँ

---

1. तेही करतारनके अभिप्रायंन, न्याव देखावन सारुं,
   कृता कृत अकृत नवेरन, कारण मुज अवतारु. 8/22
2. निजभानु सोइ न्याव सहितके, आपनुं आप अनुभवही,
   तेसेही कृता न्यावके नरणित, मीले सजातही तबही. 8/33

इस अंश का स्थान है । जगत के सर्व कार्य के कारण रूप परम कर्ता है, और ब्रह्मादि सभी देव इसीके प्रभाव में कार्य करते हैं ।

गुरु और शिष्य, माता-पिता और पुत्र और पतिव्रतधारी पत्नी आदि सभी व्यवहार और संबंध ऊपरी सतह से ही होते हैं, अंतर से नहीं ।

केवल कर्ता प्रत्येक जीवात्मा को अपनी करनी के अनुसार फल देता है । इष्ट देव को प्राप्त करने का कर्म ही सबसे श्रेष्ठ है । इस कर्म को नहीं करने से सकल विश्व के चर एवं अचर सभी जीवात्मा जड़रूप पशुवत गति को प्राप्त होते हैं । निजपति पद का ज्ञान प्राप्त करना यही विश्व के जीवों का लक्ष्य है ।

निजकर्ता बाजीगर की तरह बाजी से दूर रहकर भी बाजी की रचना करता है । सकर्ता के संकल्प की इस क्रिया को करुणासागर अलौकिक कहते हैं. [1]

परम सकर्ता परब्रह्म और जीवात्मा के बीच के अंतर की सविस्तार चर्चा करते हुए कहा गया है कि, सनक, शिवादि सभी महापुरुष जिसकी आराधना करते हैं, वही सकर्ता है, और वह इन सभी महापुरुषों से परे हैं । [2]

तेरहवे अंग में निज सकर्ता केवल से उत्पन्न होनेवाले तीन प्रकार के अंशों - सामान्य, विशेष और परम विशेष - की चर्चाकी गयी है निज कर्ता की अंतर्वृत्ति से उत्पन्न हुए अंशों के भाव, अनुभव और उनके संबंधों के प्रत्यक्षीकरण की चर्चा भी करुणासागर ने की है ।

वे कहते हैं कि देव और मनुष्य तत्व तात्त्विक दृष्टि से समान ही है, सिर्फ वाणी से ही उनकी भिन्नता है । [3]

---

1. तेही करननकी क्रिया अलौकिक, लौकिक बरनी न जाइ,
   आपने साक्षी सुपन रचत ज्यौं, कोहो कीस ठान रहाही. 12/4
2. जदपी सकर्ता परोक्ष न होयतो, आगले क्यौं आराधे,
   सनकादिक शिव शेष सहित दरु, परोक्ष बिना कुन साधे. 12/23.
3. जबते देव मनुष्य की गतीयां, अधिक नहि कोउ कुनकी,
   तत्व विचारतां सरभरही, बोलीनमें भिन्न भिन्नकी. 13/30.

जीवात्मा के निजत्व के अनुभव को सदगुरु ही समझा सकते हैं । परम गुरु के बिना अन्य कोई इसका मर्म प्राप्त नहीं करा सकते ।[1]

अंश के परमपति कैवल से अलग होने से उसमें अपने आप अज्ञान उत्पन्न हुआ है ।

निज कैवल कर्ता अवधिकाल से परे है, आद्य अंत से रहित है, अजन्मा है और सदा अखंडित है । श्री करुणासागर निज कैवल कर्ता के परम अंश हैं, अन्य अंशों से श्रेष्ठ हैं और इसकी खोज कराना-दिव्य नेत्र से दर्शन कराना - करुणासागर के गुरु-पद का कर्तव्य है ।

हंस तालेवा ग्रंथ

हंस तालेवा ग्रंथ में कुल बावन अंग हैं । प्रत्येक अंग में सात श्लोक हैं । इसका अपर नाम ' ज्ञान गीता ' भी है । इस ग्रंथ में सकर्ता सत् कैवल की स्थापना की गयी है । समस्त विश्व की उपासना अनित्य उपासना है, क्योंकि इन अनित्य सिद्धांतों से ही सभी लोगों का अहित है । इस ग्रंथ का उद्देश्य मनुष्य मात्र के लिये सुगम एवं सहज ' उपाय ' बताना है ।

परमगुरु का यश समग्र विश्व से ज्ञात है यही उनके अलौकिक ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण है । उनकी देह आंतर-बाह्य सर्वांग रूप से शुद्ध है । इस ग्रंथ के मंगलाचरण में करुणासागर की संत अवस्था के कतिपय परचे दिये गये हैं । इन परचों को प्रगट करने के हेतु को स्पष्ट करते हुए करुणासागर कहते हैं कि मैं सकर्ता सत् कैवल का परम विशेष अंश हूँ इसलिए सकर्ता सत् कैवल की शाख बढाने के लिए सकर्ता का श्रेष्ठ मत जाहिर करता हूँ ।

करुणासागर ने जीव, जगत एवं ईश्वर के पारस्परिक संबंधों तथा जीव और ईश्वर के तादात्म्य के संबंध में स्वानुभूत मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया

---

1. तेही अमाप आपके अनुभव, सदगुरु लक्ष लखावे,
बोहोरु परमपद परम गुरु बीन, कोहु मरम नहि पावे. 14/21

है । जीवात्मा और परमात्मा के बीच का फासला दूर करने के लिए बाह्य आवरण का त्याग करना नितांत आवश्यक बताया गया है, और जीवात्माओं के त्रिविध ताप नष्ट करने के लिए विविध उपायों की चर्चा भी की गयी है । हिन्दू धर्म इस्लाम धर्म आदि के बाह्याचारों का निर्देश एवं खण्डन करते हुए इनसे जीवात्मा को मुक्त करके लक्ष चौरासी के भँवर से बचने का सुलभ मार्ग अत्यंत सरल और ध्येय लक्षी उपासना का निरूपण - इस ग्रंथ में बताया गया है ।

इस ग्रंथ को बाह्य दृष्टि से देखनेवाले को सिर्फ धर्मज्ञान का भाव होता है, और आंतरिक दृष्टि से चित्त की एकाग्रता से देखनेवाले को इसमें स्पष्ट अनुभव होगा कि यह जगत ब्रह्म से निष्पन्न हुआ है, और उसका लय भी ब्रह्म में ही होगा ।

आरंभिक अंगों में प्रस्थापित किया गया है कि मैं द्वैत होकर भी मेरा असल रूप एक और अद्वैत सत्ता- सत् कैवल है । भक्ति का मर्म यही है कि जगत की व्यावहारिक स्थिति में हम द्वैत स्वरूप हैं, फिर भी हमारी उपासना अद्वैत की ही है ।

जगत के लोग इस सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते कि यह जगत चैतन्य से ही भरा हुआ है । नित्य और अनित्य उपासना का भेद समझाते हुए करुणासागर कहते हैं कि तीर्थों में स्नान करके या पाषाणादि में पूज्यभाव धारण करके अपने मन को लुब्ध करना यह सच्ची उपासना नहीं है, यह तो मन का मोह है । सच्ची उपासना यही होती है कि जिसका सेवन करने से सर्व प्रकार की वासना का नाश हो ।

तत् पश्चात पन्द्रह अंगों में शुद्ध उपासना के भेद पर प्रकाश डाला गया है । 26 वे अंग से ब्रह्म के नाम रूपात्मक स्वरूप की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि ब्रह्म जीव और जगतका संबंध सुवर्ण और सुवर्ण के विभिन्न ` घाट ` की तरह है । करुणासागर शक्कर के श्रीफल का दृष्टांत देते हुए समझाते हैं कि जीव , जगत और ईश्वर का संबंध भी इसी

प्रकार है ।[1]

करुणासागर 47 वे अंग में सकर्ता सत् कैवल के स्वरूप का वर्णन करने के लिए दृष्टांत देते हैं कि उनका अंश बंधन-मुक्ति से परे है । वे सबसे अलग होकर भी सूत्रवत् हैं । अंशरूप जीवात्मा पर पदार्थों का आवरण होने के कारण वे अपना निज रूप खो देते हैं, और अपने आप इस जगत को बंधनरूप पाते हैं । कैवलद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए इस अंग में करुणासागर समझाते हैं कि एक आदमी बहुत गरीब था । भिक्षावृत्ति द्वारा वह अपना निर्वाह चलाता था । वही आदमी निद्रावस्था में स्वप्न का अनुभव करते हुए राजा बन गया और विविध प्रकार के भोग भोगने लगा । जाग्रत अवस्था का दुःख और स्वप्नावस्था का राजस्व इन दोनों की पहचान सुषुप्त अवस्था में न रही । इससे आगे तुरीय अवस्था में इनमें से कुछ भी कहने योग्य न रहा क्योंकि तुरीय अवस्था सुख-दुःख से पर है, जैसे कोई बाजीगर सब बाजी से अलग होकर भी खेल को चलाता है ।[2]

अंतिम अठारह साखियों में ग्रंथ की फलश्रुति दी गई है । इनमें करुणा-सागर अपने पंथ का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कायम पंथ में हम सत् कैवल का ' देदार ' कराते हैं । हमारा यह पंथ विशिष्ट पंथ है, और हम सच्चे यार को पथ प्रदर्शन का विश्वास दिलाते हैं ।[3]

---

1. कहे कुवेर श्रीफल साकरनु ।
   गोटली चोटली सहित फाव्यु ।। 34/5
2. जाग्रत जाचक सुप्न राय भयो ।
   दोय सभोपतिमां न रहेवे ।।
   ते पर तुरियागां रहेवा ना कछु ।
   सरव पहेचान ते तेज लेहवे ।। 47/4
3. कायम पंथ हमारडा, कैवलका देदार ।
   सत् कुवेर हे आगवा, आवोने कोई यार ।। 52/18

अद्वैता द्वैत बरवेद चिंतामणि

अद्वैता द्वैत बरवेद चिंतामणि ग्रंथ को पन्द्रह अंगों में विभाजित किया गया है । बरवेद अर्थात् निर्वेद, अतः इस ग्रंथ में वैराग्य भावना का निरूपण करते हुए यह बताया गया है कि मानव जीवन में इस भावना का क्या महत्व है, और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ।

संसार के सर्व आचार्य और अवतारादि पुरुषों की तुलना में इस ग्रंथ के रचयिता परमगुरु करुणासागर ने अपनी विशेषता इस ग्रंथ में दिखाई है । परम गुरु करुणासागर अजन्मा है, परमविशेष अंश है, और सकर्ता पति के आदेश से जगत के अज्ञानरूपी अंधकार का परिहार करने के लिए सकर्ता पति अद्वैत को प्राप्त करने का मार्ग दिखलाने के लिए जगत में आये हैं ।

सकर्ता पति अद्वैत ने ही स्व संकल्प से जगत की उत्पत्ति की है, इसीलिए जगत में अंश द्वैत रूप में भ्रमण करने लगे, और विलास की ओर अग्रसर होकर सकर्तापति और स्व स्वरूप को भूल गये ।

इस ग्रंथ में ब्रह्मा के मानसपुत्र सनकादि के वैराग्य का वर्णन विस्तार से किया गया है । करुणासागर ने इस बात पर अधिक बल देते हुए कहा है कि निजपति कैवल कर्ता को प्राप्त करने के लिए प्रेमयुक्त अनुराग और तीव्र वैराग्य की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता स्त्री संगी आचार्यों के रचे हुए शास्त्रों को नहीं पढ़ने की भी है ।

करुणासागर कहते हैं कि जिस तरह अहिने अपना मणि गँवाया है, इस तरह इन अंशों ने भी अपनी ' सुरत ', ' मति ' और ' आरत ' को गँवाया है, इसलिए उनके[illegible] पास निज पति के धाम पर पहुँचने के लिए कोई साधन नहीं रहा है ।[1]

निजपति कर्ता को प्राप्त करने के लिए करुणासागर नारी से नेह न करने की आज्ञा देते हैं, और कहते हैं कि निर्वेद और ब्रह्मचर्य से ही परम तत्व के

---

1. सोतो सुरत अक्कल आरत इत, सब विधि सरच सुनाये,
बहोरु पतिनपे कुन पोंचा इत, ज्यों अहि मणि गमाये. 5/33

मर्म को प्राप्त किया जा सकता है ।[1]

करुणासागर ने छठे अंग में इस बात की विस्तृत रूप से चर्चा करते हुए कहा है कि मनुष्य किस प्रकार विषय-वासनाओं से निर्बल होकर अपने शरीर के साथ स्व स्वरूप को भी भूल गया है ।

वे कहते हैं कि शिव ब्रह्मा एवं विष्णु को भी जिस मार्ग की मैं बात करता हूँ, उसकी जानकारी नहीं है क्योंकि उनमें से किसी ने भी निजकर्ता की पहचान नहीं की है । चौदहो भुवन के चित्त को और उस चित्त के पति को जो इन सबसे पर है, और भिन्न है, इसी तत्त्व को समझनेवालों को ही ` निज ` का कह सकते हैं । सर्व अंश दृष्टि और तत्त्वों की दृष्टि से समान हैं, और विशेष अंशों का भी ऐसा ही है । इसीलिए कर्ता से उत्पन्न हुए इस कृत रूप जगत में इन अंशों ने निज कर्ता की शरण को ग्रहण किया हुआ है । जो अल्पज्ञ अंश हैं उन्होंने अनित्य पदार्थों में निमग्न पुरुषों के साथ अनुराग किया है, ऐसे पदार्थों से निज परमपति अलिप्त हैं ।

` परम गुरु विशेष बरनन ` अंग में करुणासागर कहते हैं कि परमगुरु के बिना परमपति कैवलकर्ता को कोई प्राप्त नहीं कर पायेगा, इसलिए परमपति कैवल को प्राप्त करने के लिए परम गुरु की शरण में जाना चाहिए । इसी अंग में देव-भाषा संस्कृत और प्राकृत भाषा का संबंध बताया गया है । निज कैवलकर्ता का हेतु अपने बड़े और छोटे पुत्रों में कोई अंतर रखता नहीं होता, उसी तरह संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में कोई अंतर नहीं हो सकता ।

` व्याकरण, व्यवहार, प्राकृत भाषा और परम लक्ष ` नामक अंग में करुणा सागर प्राकृत भाषाके बारे में कहते हैं कि संसार के सर्व जनों को संतोष प्राप्त करने के लिए दोनों भाषाओं का मिश्रित व्यवहार करना पड़ता है ।

वे कहते हैं कि निज कैवल कर्ता कभी अवतार धारण नहीं करते । पंथ के आचार्यों ने एक दूसरे से विरुद्ध वर्तन करनेवाले धर्मों की स्थापना की है । उनका

---

1. तबते नेह न करीत नारसे, जीनु मीलन किरतारु,
   ज्यों बीजम अंकुरनके मुख, कंचित कटे नकारु. 5/46

वर्तन ठगबाजी जैसा है ।

शिव ब्रह्मा से लेकर पुरुष-प्रकृति तक के सर्व विशेष और सामान्य अंश बड़े भाई के समान हैं, फिर भी बड़े भाई को पिता कहना आवश्यक नहीं है ।

जिसने सर्व अंशों की उत्पत्ति की है उसी परम पुरुष सकर्ता को इन अंशों ने पहचाना नहीं है, फिर भी विशेष गति के अंशों का लक्ष्य ब्रह्म सिद्धांत ही है ।[1] तर्कयुक्त न्याय और कृत्रिम गुरुओं से बचने के लिए परम गुरु की पहचान आवश्यक है । इसीकी चर्चा ग्यारहवे अंग में की गयी है । बिना तीव्र वैराग्य के माया को भेदकर उसके पार जाना असंभव है । नकली कर्ताओं का नाश और असली कर्ता के धाम की पहचान तथा साधुओं को कुटिलता का त्याग करने की चेतावनी करुणासागर ने तेरहवे अंग में दी है ।

करुणासागर कहते हैं कि मैं चौदह लोक को सावधान करते हुए जंबूद्वीप में आये हुए भरतखण्ड के पश्चिम विभाग में गुजरात नामक देश में सारसा गाँव में आया और तीव्र वैराग्यरूप के बोध का उपदेश दिया ।

अंतिम अंग में करुणासागर कहते हैं कि मैं कल्प पर्यंत इस भवरूप संसार में वापस नहीं आऊँगा क्योंकि मैं शरीर की अंतिम घटिका तक परमपति का परम लक्ष्य रखकर परमपति के यहाँ जा रहा हूँ ।

विश्व बोध

विश्व बोध ग्रंथ में कुल पाँच अंग हैं, और प्रत्येक अंग में चार पात्रों के माध्यम से संसार के सार-असार का वर्णन किया गया है । इन पात्रों में कुछ जन मति भ्रष्ट हैं इसलिए वे सब सार रूप सत्य वस्तु को नहीं पहचान सकते । इन चार दुराग्रहियों में बुरा चाहनेवाला, अपराधी अंध और बूचट हैं । ये सब संत-सज्जन के निंदक होने से नरक के गामी होते हैं ।

---

1. तेही न जानत परम पुरुषकु, जीने अंश उपजाये,
   जेही सामान्य विशेष आद त्यौं, रहे अन्य अनुराये. 10/25

प्रथम अंग में मांसभक्षी और मद्यपान करनेवाले लोगों की व्याख्या की गयी है । करुणासागर कहते हैं कि ऐसे लोगों को हरि का मार्ग प्राप्त नहीं होता । कर्मकांडी ब्राह्मणों को और अंध मूर्ति पूजा द्वारा लोगों को ठगने की वृत्ति रखनेवालों को ध्यान में रखते हुए कहा गया है कि उन्हें इतनी भी समझ नहीं होती कि जीवन के अन्तिम क्षणों में क्या कीमत चुकानी पड़ेगी ?

दूसरे अंग में करुणासागर अज्ञानी, दुष्ट, अर्धदग्ध और नगुरे आदमियों की उत्पत्ति की सविस्तार चर्चा करते हुए कहते हैं कि केवल उच्च कुल में जन्म लेने मात्र से ही कोई ऊँचा- महान नहीं कहला सकता , उसके लिए तो ज्ञानी की जरूरत है । [1] करुणासागर कहते हैं कि वाल्मीकि , नारद, पराशर, गौतम, व्यास और गजेन्द्र आदि सबका जन्म नीच जाति में हुआ था, फिर भी ये सब ज्ञान से ही उच्च कहे गये । इन अज्ञानी, दुष्ट, अर्धदग्ध और नगुरे की प्रवृत्तियों का सुन्दर चित्रण करते हुए कहा गया है कि जैसे किसी अन्न के भिगोने पर भी उसमें कुछ ` अद्राव्य गांगडु ` रह जाते हैं, इसी प्रकार इन दुष्टों के हृदय अद्राव्य ही रह जाते हैं ।

तीसरे अंग में ` साकुट `, [विषयी] लंपट, लोभी और खल इन चार दुराग्रहियों की प्रवृत्तियों का ख्याल देते हुए कहा गया है कि ये दुराग्रही मतिमंद, देहासक्त और मलयुक्त होते हैं । इनका स्वभाव इन्द्र, आकफल आदि फलों के समान होता है, क्योंकि इन फलों में स्वाद तो रहता नहीं, परन्तु ये जहरीले होते हैं, जिससे पशु, पक्षी या मानव इन फलों के स्वाद चखने से दूर रहते हैं । यही स्थिति इन मतिमंदों की है ।

चतुर्थ अंग में ` हरिजन `, निजदास, भक्त और सेवक का वर्णन किया गया है । संत पुरुष की सेवा और देहाभिमान का त्याग यही ` हरिजन ` का कर्तव्य है । निजदास का दिल उदार और संत के चरणों में सदा लीन रहता है । भक्त ` भवभेदु हैं, वे सेवक गुरुशरण में शुद्ध हेत रखनेवाले हैं । इन भक्तों की अंतरदशाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इनके हृदय में नख

---

1. ऊँचे कुल नहि ऊँच कहावत, नीचे नीच न कीजे. 2/10

शिख पर्यंत हर रोम-रोम में, नस-नस में प्रेम रस भरा रहता है ।[1]

पंचम अंग में करुणासागर ने साधु,संत,योगी और वैरागी के प्रति अपना सदभाव व्यक्त करते हुए कहा है कि जैसे दूध में घृत रहता है वैसे ही इनके शरीर भौतिक होते हुए भी चैतन्ययुक्त रहते हैं ।जिस प्रकार कछुआ अपने अवयवों को इच्छानुसार प्रकट करता है और छिपा देता है उसी प्रकार योगी पुरुष भी साधन-स्वरूप अपनी इंद्रियों को अपने वश में रखते हैं । वैरागी पुरुष काम को तृण तुल्य मानकर उसका त्याग करते हैं । इस प्रकार इस अंग में वैराग्य और त्याग का विस्तृत वर्णन किया गया है । संत पुरुष भगवंत को अपने से भिन्न नहीं समझते क्योंकि वे अपनी देह को बला समझते हैं । करुणासागर अंत में कहते हैं कि संत इन सज्जनों में परम श्रेष्ठ हैं ।

`विश्व बोध` ग्रंथ में पहले तीन अंगों में दुर्जनों का और अंतिम दो अंगों में सज्जनों का वर्णन है । इस प्रकार विश्व के उद्यान में भिन्न भिन्न प्रकार के लोगों का अस्तित्व है और उनकी प्रवृत्तियाँ भी अलग-2 हैं । संत-पुरुष की प्रवृत्ति का अनुगमन करने का उपदेश कवि ने इस ग्रंथ में दिया है ।

विश्वभ्रम विध्वंस निधि ग्रंथ
==========

कायम पंथ के इस सिद्धांत ग्रंथ में छप्पन सिद्धांतों का वर्णन किया गया है । कायम-पंथ के मुख्य सिद्धांतों का निरूपण करते हुए इस ग्रंथ में विश्वभ्रम का विध्वंस करने के लिए,और जगत के भ्रमित जीवों को सच्ची राह दिखाने के लिए निज सकर्ता कैवल ने अपने परम विशेष अंश करुणासागर को आदेश देकर,अपना प्रेमसभर उपदेश देकर कायम-पंथ के स्थापक के रूप में अवतारित किया । उन्होंने मुमुक्षु जीवात्माओं को निज सकर्ता सत् कैवल का उपदेश दिया ।

`करुणेश-कृपानिधि` संवाद के माध्यम से सिद्धांत की स्थापना करते हुए , प्रश्न और उत्तर के रूप में अनेक संशयों का समाधान दिया गया है ।

---

1. रोम रोम राग प्रेमरस भरीया, निखशिख सकल समेतु,
   ते हरिजन निजदास भक्तजन, सेवक शरण सहेतु. 4/12

मंगलाचरण के आरंभ में निजकर्ता सत् कैवल की स्तुति करते हुए राम और कृष्ण के असली स्वरूप का वर्णन किया गया है । तत्पश्चात् क्रमशः अंश और अंशी की पहचान, बीज और अंकुर की उत्पत्ति का रहस्य, गर्भ का आधान, गर्भस्थान में रहनेवाले बालककी विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन, जीवन में प्राणायाम का स्थान, पंचतत्त्व, इंद्रियाँ, अंतःकरण, मनसहित शरीर की अद्भुत रचना, सृष्टि का सर्जन और प्रलय, शुद्ध संकल्प और उनके द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड का सर्जन, चार प्रकार के जीव, निजकर्ता का अभिज्ञान इत्यादि का वर्णन किया गया है ।

जगत के स्वरूप निर्णय के बारे में इस ग्रंथ की मुख्य पीठिका शंकराचार्यके कैवलाद्वैत से अनुस्यूत है । ` ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या ` इस सूत्र के आधार पर जगत-स्वरूप की चर्चा की गयी है । पारमार्थिक रूप से जगतका अस्तित्व है ही नहीं । उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों के द्वारा जगत की प्रचलित मान्यताओं का उन्मूलन और निरसन भी किया है ।

सामान्य तौर पर संसारी जीवात्मा तीन देवों [ब्रह्मा, विष्णु और महेश] का स्वीकार करते हैं, परन्तु करुणासागर सिद्धांत निरूपण करते हुए कहते हैं कि पुराणकथित चार प्रकार की मुक्ति सांसारिक जीवात्माओं को शास्त्रोक्त नवधा भक्ति के आधार पर ये तीन देव प्रदान करते हैं । व्यासजी ने भी शास्त्रों और पुराणों में निरूपित काल्पनिक ईश्वर की महिमा में विश्वास दिलाया है । करुणासागर कहते हैं कि अनंत ब्रह्मांड के सर्जनहार सकर्ता कैवल इन संसारी जीवात्माओं का कार्य करने के लिए किसी भी तरह से मानव देह धारण नहीं करते, इतना ही नहीं, पर इस हेतु सकर्ता को अवतार धारण करने की आवश्यकता ही नहीं है । इनके अनुसार संसार के ये शरीरधारी देव अन्य जीवात्माओं से भिन्न नहीं हैं ।

वे कुंभकार का दृष्टांत देते हुए सकर्ता अद्वैत के सिद्धांत का निरूपण करते हैं । जिस तरह कुंभकार भिन्न भिन्न प्रकार के बर्तन बनाता है, उसी प्रकार संसार के सर्जनहार सकर्ता कैवल अनेक जीवों का सर्जन करते हैं - संसार

की रचना करते हैं । सर्जन के आरंभ में आदि पुरुष और प्रकृति के संयोग से त्रिदेव [ब्रह्मा, विष्णु और महेश] को प्रादुर्भूत किया गया, और तदनुसार त्रिगुणी प्रजा [देव, दानव और मानव] का भी सर्जन किया गया । वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि इन सब अवतारी पुरुषों का सर्जन सकर्ता ने ही किया है । संसार के जीवों के कल्याण हेतु इन अवतारों को कुछ अधिकार दिये गये हैं । इन अधिकारों के मुताबिक वे संसारी जीवों का कार्य सकर्ता के आदेश के मुताबिक करते हैं । सांप्रदायिक आचार्यों ने अवतारी पुरुषों के चमत्कारों की बात को बढा चढा करके, जीवात्माओं को बहकाया है, फलस्वरूप सांसारिक जीव परब्रह्म को पहचान नहीं पाये ।

करुणासागर स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वेद वचन से ही जगत को भ्रमित करके अनेक जीवों को सकर्ता कैवल से विमुख किया गया है, वास्तव में सकर्ता और अन्य जीवों का संबंध अंश-अंशी का है ।

साखी ग्रंथ

इस ग्रंथ में कुल अट्ठावन साखियाँ हैं । करुणासागर ने इन साखियों में अद्वैतानुभव और आत्मानुभूति के आनंद की अभिव्यक्ति की है । आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए सद्गुरु कृपा अनिवार्य है । [1] सद्गुरु प्राप्ति के लिए आत्मशुद्धि अनिवार्य है । आत्मशुद्धि के लिए अहंता का त्याग करना नितांत जरूरी है ।

जीव और ईश्वर दोनों अवतार कैवल-अंश के ही हैं, इस सत्य को जो जानता है, उसे राजा और रंक में कोई फर्क मालूम नहीं पड़ता क्योंकि उसकी निगाह में सब अंश समान ही हैं । परमपद की प्राप्ति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि ' आप ' अर्थात् अहंकार का त्याग करने से ही आत्मा

---

1. कहे कुबेर सतगुरु बिना होय नहि परकाश । 16

शुद्ध बनती है ।[1] आत्मस्वरूप की स्थिति में न कुछ लेना है, न कुछ देना है । यह अदबद स्थिति है, जिसमें जीव कैवलवेत्ता के द्वारा 'लक्ष' को प्राप्त करके परमपद की प्राप्ति करता है ।[2]

इस ग्रंथ की भाषा ब्रह्मविद-संतबानी है । इस प्रकार इस छोटे से ग्रंथ में भी करुणासागर ने अद्वैत की चरमसीमा का संस्पर्श करने का सफल प्रयत्न किया है ।

तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि

तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि विशेष प्रकार के पदों से युक्त ग्रंथ है । इन पदों में प्रतिपदा से अमावस्या तक की सभी तिथियों का वर्णन किया गया है । परंपरागत इस वर्णन में करुणासागर ने ब्रह्म निरूपण का वर्णन किया है । वे कहते हैं कि ' कैवल कर्ता ' ने स्वेच्छा से अरूप से अपने स्वरूप का निर्माण किया है । इसी इच्छा से ही शक्ति की उत्पत्ति हुई है, जिससे पंच तत्त्वों का निर्माण किया गया है । करुणासागर पंच तत्त्वों की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए इन तत्त्वों के समन्वय से ही देह की रचना हुई है ऐसा प्रतिपादित करते हैं । इस ग्रंथ में अंश और अंशी के संबंध की विचारणा करते हुए पंचभौतिक शरीर की उत्पत्ति की चर्चा की गयी है । आलोच्य कवि ने

---

1. आपा मेटे तो आप है, सो आपा कछु और । 47
2. देनेको कछु है नहि, लेनेका कछु नहाय ।
   अष्टपन तोहे बिन किया, पण गुरुबिना समझण न हाय ।। 49
   कैवलवेत्ता गुरु मिले, तो दे लक्ष बताय ।
   कहे कुबेर कारज छते, जीव परमपद पाय ।। 50

जीव, जगत और परब्रह्म की मूलगत एकता का स्वानुभवात्मक वर्णन करते हुए, इन विभिन्न स्वरूपों में व्यक्त एकता के अंतर्गत जो भिन्नता है, उसका भी वर्णन किया है । [1]

करुणासागर ब्रह्मरूप समुद्र और जीवजंतु रूप तरंगों का दृष्टांत देकर प्रतिपादित करते हैं कि ब्रह्म और जीवात्मा का संबंध अद्वैत है । [2] वे कहते हैं कि अद्वैत परब्रह्म का स्वानुभव प्राप्त करने के पश्चात जगत की भ्रमणाओं में लिप्त होने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि अद्वैत भाव में किसी के साथ प्रतिवाद करने की गुंजाइश ही नहीं । [3]

पन्द्रहवी तिथि के अंतिम चरण में वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि यह ब्रह्म विचार वेदांत के अनुसार है । वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जो ' बड़भागी ' है, इसी को ही परमपति अपने पास बुलाते हैं । जप, तप, साधन और स्मरण इन साधनों से अप्रतिम स्नेह संबंध रखनेवाले को ही निजकर्ता का स्वानुभव प्राप्त होता है । [4]

---

1. ये से सरजन एक है, घाट अनंत अपार ।
   कीट पतंग ब्रह्मा लगे, आप खेलावनहार ।। 7/4
2. कहे कुवेर भवन करे, हरि जलमें जन मीन ।। 9/6
3. एक दशावंत अनुभवी, भवमें नव भरमाय ।
   आप सहित आपु नहि, कहेनो करे प्रतिहाय ।। 11/1
4. जो पति लेत बोलायके, तो तिनके बड भाग्य ।
   कहे कुवेर पाय पद, जे आपनी निज जाग्य ।।
   साखी - 35
   तबत्ये निज करतारसे , रखो संबंध सनेह ।
   जप, तप, साधन स्मरण, करीके सधो सनेह ।।
   साखी - 33

इस प्रकार `तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि ` ग्रंथ का करुणासागर की रचनाओं में अपना विशिष्ट स्थान है ।

ज्ञान गोदड़ी

` सत् कैवल ` संप्रदाय के अनेक पीठ हैं । प्रस्तुत ग्रंथ चेतनदासजी ने करुणासागर मंदिर चकलासी से ` विश्व बोध महामणि ` ग्रंथ के अंतर्गत प्रकाशित किया है । प्रस्तुत ग्रंथ में ज्ञान गति से पूर्ण ` ज्ञान गोदडी ` का महत्त्व समझाते हुए ` कायम पंथ ` के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है । इन सिद्धान्तों में जीवात्मा और परमात्मा के विस्तृत संबंध की चर्चा की गई है ।

करुणासागर प्रस्तुत ग्रंथ में गुरुगम और संत समागम की महिमा समझाते हैं । वे जीवात्माओं को शील, संतोष और दया जैसे सद्गुणों को ग्रहण करके जन्ममरण का दुःख दूर करने का मार्ग दिखाते हैं । उन्होंने ` सत् ` नाम का महामंत्र दिया है । वे कहते हैं कि जड़ और चेतन का पृथक्करण करके ` कैवल कर्ता ` का स्मरण ध्यान करना आवश्यक है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में करुणासागर ने कहा है कि अजपाजाप द्वारा निज स्वरूप को जानना, पिंड और ब्रह्मांड से पर, चौदह लोक से पर सकर्ता सत् कैवल के हृदय के साथ ` नूरता ` द्वारा एकता सिद्ध करना ` कायम पंथ ` का लक्ष्य होना चाहिए । उन्होंने अपने पट शिष्य नरवेद सागर को ` ज्ञान गोदडी ` का प्रकाश स्पष्ट करके अज्ञानी जीवात्माओं को ` सकल जीव की मीटे भरम निवासा ` [1] के हेतु अखंड, अजर, अमर और अविनाशी गत का लक्ष्य दिया । उन्होंने जंबुद्वीप में भारत देश की पवित्र गूर्जर भूमि में सारसापुरी में स्थित होकर इस ` ज्ञान गोदडी ` का उपदेश सर्ववर्ण के लोगों को दिया है । उन्होंने ओड गाँव के कृष्ण स्वामी को अपना गुरु माना है - कृष्न स्वामी मम गुरु कीनेही, बसाई सारसापुरी सनेही । [2]

---

1. प्रस्तुत ग्रंथ - 12.
2. प्रस्तुत ग्रंथ- 9.

इस प्रकार ` ज्ञान गोदडी ` ग्रंथ में करुणासागर ने अंश- अंशी की एकता का मार्ग दिखाया है ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ

प्रस्तुत ग्रंथ ` केवल प्रकाश ` [प्रकाशित करुणासागर मंदिर उमरा] में भी संकलित है । सारसा मंदिर से विभिन्न ग्रंथों का एक संकलन प्रकाशित हुआ है, जिसमें भी यह ग्रंथ संकलित है । इन दोनों प्रतियों में किसी प्रकार का अंतर नहीं है । इस ग्रंथ में करुणासागर ने ज्ञान भक्ति और वैराग्य के पारस्परिक संबंध की चर्चा करते हुए एक दृष्टांत देकर कहा है कि जिस तरह वृक्ष अपने पत्तों का वसंत ऋतु में वस्त्र की भाँति त्याग करके स्नेहपूर्वक नवीन पत्तों को पुन: धारण करता है, इसी तरह आत्म ज्ञान और भक्ति वैराग्य का संबंध है । इस संबंध को वे पुरुष और उसके आभूषण की उचित उपमा देते हैं --

ज्यौं निज ज्ञान पुरुष सत्, भूषण भक्ति वैराग ।। [1]

ज्ञान उदित होने से इन्सान अशुभ कर्मों का त्याग करता है, और अच्छे कार्यों के प्रति उसमें रुचि उत्पन्न होती है, ऐसा कहकर वे प्रेम और त्याग के अंग रूप में भक्ति एवं वैराग्य का प्रतिपादन करते हैं । आत्मज्ञान से भक्ति और वैराग्य की उत्पत्ति होती है, यह समझाने के लिए वे एक दृष्टांत देते हैं कि जिस प्रकार बीज के अंकुर से पराग रूप पत्तों का उदय होता है, उसी प्रकार आत्मज्ञान से भक्ति और वैराग्य की उत्पत्ति होती है -

ज्यौं बीजग अंकुरसे प्रगटे पत्र पराग ।
त्यौं निज ज्ञान समज थकी, उपजे भक्ति वैराग ।। [2]

उन्होंने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य, इन तीनों के लक्ष्य की, अधिकार

---

1. दोहा- 4
2. दोहा- 8

की और उनके तीन [उत्तम, मध्यम और कनिष्ट] प्रकारों की चर्चा की है । वे कहते हैं कि वैराग्य रूप साबुन से सत्य रूप शिला पर धोबी रूप गुरुदेव कपड़े पटककर जगत का अज्ञान रूप मैल दूर करते हैं -

भक्ति अनिन शुभ सलिल, मलिन भव रजक गुरुदेव
साबु वैराग शल्या सत पटक लीये पट एव ।। [1]

उन्होंने इस दृष्टांत के द्वारा अनन्य भक्ति को शुभ- सलिल माना है । जीवात्मा के अज्ञान- मल को दूर करने का विकट कार्य गुरुदेव ही कर सकते हैं । इस तरह करुणासागर ने गुरु भक्ति की महिमा गाई है ।

भक्ति मुक्ति का साधन है, जिसके बिना संसार के त्रिविध ताप दूर नहीं हो सकते । मलिन मन को भक्ति के पवित्र जल से शुद्ध करके जीवात्मा मोक्ष प्राप्त कर सकता है । मोक्ष प्राप्ति के बिना मानव का पंचभौतिक शरीर अर्थहीन ही है । ध्रुव, अंबरीष, प्रहलाद, वाल्मीकि, ब्रह्मा, शंकर और शेषादि के हृदय में इसी प्रकार की भक्ति थी, ऐसा कहकर उन्होंने भक्ति को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है । अपने तन, मन और धन से परमात्मा के प्रति शरणागति को उन्होंने अनन्य भक्ति माना है । ऐसी अनन्य भक्ति को उन्होंने उदय से अस्त तक प्रकाशमान सूर्य के समान माना है ।

करुणासागर ने अनन्य भक्ति के इस सिद्धांत का महत्त्व बताते हुए स्पष्ट रूप से कहा है कि मेरे शरण में आनेवाले जीवात्माओं को मैं भवपार करा कर निजधाम-कैवलधाम में भेज दूँगा, जहाँ से जन्म-मरण रूप भव संकट से जीवात्मा मुक्त हो जाएगा और उसे जगत में वापस नहीं आना पड़ेगा -

जाइ निज धाम परम सुख पावो ।
भवसंकट वट बहोरु न आवो ।। [2]

---

1. दोहा -17.
2. ज्ञान भक्ति निरूपण ग्रंथ- ज्ञान संप्रदाय सारसा, पृ. 16.

करुणासागर अपने हृदय-कमल को निर्मल बनाकर अंशों को केवल के स्मरण में ही अहर्निश रहने की सीख देते हैं । अखा की भाँति वे भी अपने अंशों को भक्ति के साधन द्वारा अहंता त्याग की महिमा बताते हैं ।[1] भक्ति के प्रकारों में उत्तम उपासना- भजनानंद है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है । वे भक्ति को रसायण की उपमा देते हैं, जिससे अष्ट सिद्धियाँ और नौ निधियाँ प्राप्त होती हैं । उन्होंने भक्ति की महिमा गाते हुए सद्गुरु कृपा पर विशेष बल दिया है । ऐसे सद्गुरु से परम पद की प्राप्ति होती है ।

इस ग्रंथ में करुणासागर ने जीवों के मोक्ष अंकुर को उदित करने के लिये भक्ति रूपी सघन घन मेह की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया है ।

महामणि ग्रंथ

' महामणि ' ग्रंथ में स्वामीनारायण और आघनारायण की वास्तविक स्थिति का निरूपण है । स्वामीनारायण और निजनारायण के बीच इतना फासला है कि एक ' महीपतखाँ ' है, और दूसरा ' पगरखाँ ' है । स्वामीनारायण धर्म के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित करते हुए करुणासागर कहते हैं कि--

महीपतखाँ नीजनारण, सांमीनारायण पनीखांन ।
छोत्य लगाई ब्रह्मकु, जुठा उनका ज्ञान ।।[2]

स्वामीनारायण संप्रदाय के ज्ञान और सिद्धांत झूठे हैं, इसलिए ब्रह्म तक पहुँचने में बाधा स्वरूप है ।[2] उस समय स्वामीनारायण संप्रदाय में बाह्य वैराग्य का महत्त्व अधिक था, और नारी के प्रति ' मन भावे, पर मुँड हलावे '

---

1. ज्ञान भक्ति निरूपण ग्रंथ- ज्ञान संप्रदाय सारसा, पृ. 17.
2. 5.

की उक्ति चरितार्थ होती थी । धन संग्रह की लालसा भी हृदय में रहती थी । नारी और धन के प्रति जगत को दिखाने के लिए ही वैराग्य भाव प्रदर्शित होता था ।[1] त्याग प्रपंच मात्र था । प्रजा जड़ और अज्ञानी थी । वे एक दृष्टांत देकर कहते हैं कि जिसका कोई मालिक नहीं है, ऐसा खेत उज्जड होता है । इसी तरह गुजरात की अज्ञानी प्रजा को ज्ञान की बड़ी बात करने से कुछ लाभ नहीं होगा । तस्कर और भिक्षुक दोनों मिलकर क्या कर सकते हैं ? वे कहते हैं कि ऐसे आदमियों से जिसका नाता हो वह स्वयं भी बदनाम होता है ।[2] वे कहते हैं कि हरे वृक्षों का नाश करके उस भूमि पर ईंट और चूने से बड़े बड़े मकान बनाकर उनमें स्त्री पुरुषों की बड़ी मजलिसे रखना कहाँ का त्याग है ?[3] स्वामीनारायण संप्रदाय के सिद्धांत भेद के बारे में वे कहते हैं कि - " लोचन बीज कपास के शरीर छाण के देव । " 12

वे कहते हैं कि इस संप्रदाय के साधुओं का वर्तन भी स्वार्थमय है, और कोई प्रतिवाद करे तो कहा जाता है - " श्रीजी महाराज का हुक्म है " - कहे हुक्म महाराज । 10

इस संप्रदाय में दिव्य अनुभव का अभाव है । शास्त्र पठन से माछी-मार मछली पकड़ने की पद्धति को ज्ञात नहीं कर पाता, इसके लिए उसे स्वयं अनुभव प्राप्त करना चाहिए, उसी प्रकार सिर्फ शास्त्र-पठन पानीको वृथा मथने के बराबर है ।[4]

सच्चा वैराग्य और त्याग आंतरिक होना चाहिए । बहिर्त्याग वह त्याग नहीं है, इस तथ्य की विस्तृत चर्चा इन्होंने की है । दुनिया को

---

1. 3.
2. 8.
3. 9.
4. 13.

धोखा देकर दाम प्राप्त करना और इसके लिए बाह्य शरीर पर त्याग के निशान धारण करना यह तो ठगाई है, त्याग नहीं ।[1] बड़े बड़े मंदिर महल बनाने से जगत में अपनी कीर्ति बढती है, मगर इस कीर्ति से ज्ञान और वैराग्य का अगम मार्ग लोग पा नहीं सकते । वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि आद्य शंकराचार्य, तत्त्वचिंतक कबीर जैसे श्रेष्ठ ज्ञानियों की निंदा करना अनुचित है ।[2]

उनके मतानुसार कर्मकांड के झूठे स्पर्शास्पर्श को माननेवाले लोग पाखंडी हैं । जैसे कि बंदर श्रमपूर्वक घूँघची [चणोठी] का ढग करता है, इससे कभी उद्योत नहीं होता, उसी तरह कर्मकाण्ड से आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता ।[3] वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि तांबा जैसी धातु के बनाये हुए नंग के ऊपर सुवर्ण का गिलेट करने से तांबा सुवर्ण नहीं हो पाता, इसी तरह परमहंस नाम धारण करने से परमहंस पद की प्राप्ति नहीं होती ।[4]

स्वामी नारायण संप्रदाय के साधुओं के अंतर में वैराग्य की प्रबल भावना नहीं है । कंचन और कामिनी का त्याग करनेवाले ही सच्चे वैरागी हैं । इस संप्रदाय के साधुओं का आंतरिक व्यवहार व्यभिचारी जैसा है । उनके मंदिरों में स्त्रियों का और विधवाओं का समूह दृष्टिगोचर होता है -

> गुप्त रहे वीवीचारणा, ज्यों नारी गत्य अरंद ।
> मोह नही तो क्यों रखे, नंदीक नारीके वृंद ।। 62
> बोहोत प्रमोधी बोडकी, भरे ओरका ओर ।
> रंडीबाज छीनालवा, हंद्र हरांमीखोर ।। 63

---

1. 18.
2. 29.
3. 31.
4. 32, 33.

करुणासागर कहते हैं कि ऐसा संप्रदाय जीवात्माओं को माया की जाल में फँसाता है । आत्मज्ञान के बिना यह सब बाह्य आडंबर ही है । जगद्गुरु शंकराचार्य, कबीर आदि वेदांती ज्ञानशक्ति से पूर्ण, दृढात्मक ध्वज फहरानेवाले ज्ञानी संत पुरुष ही हैं । इन सब धुरंधरों ने अपने अपने संप्रदाय की बात की है, पर किसी संप्रदाय की प्रगट निंदा नहीं की । स्वामीनारायण संप्रदाय ने इस नीति का उल्लंघन किया है । धन के लिए ढोंग करना, और दंभ से समग्र देश को दगा करने की नीति इस संप्रदाय की है । माता कैसी भी व्यभिचारिणी हो, लेकिन उसका पुत्र अपनी माता के बारे में कुछ कह नहीं पाता, इसी तरह इस जगत के जीवात्माओं को स्वामीनारायण संप्रदाय की पोल को खोलने के लिए करुणासागर को यह बात प्रकट करनी पड़ती है । [1]

वे स्पष्ट रूप से जीवात्माओं को आदेश देते हैं कि स्वामीनारायण संप्रदाय में दाखिल होकर कोई भी जीवात्मा मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता ।

कोट उपाय करो केहु, तेहु ते मोक्ष न होय,
सांमी सेहेजानंदके, फंद परो मत कोय ।। 154

जीवात्माओं के हित की रक्षा करते हुए वे कहते हैं कि हम ही केवल पुरुष हैं । इन सर्व अंशों के कर्ता सत् केवल स्वरूप स्वयं हमीं हैं ।

सच्चे सद्गुरु की आवश्यकता पर बल देते हुए वे कहते हैं कि ज्ञानहीन गुरुओं से जीवात्माओं का कल्याण नहीं होता । [2]

सहजानंद स्वामी का संप्रदाय आत्मज्ञानहीन है । धन के लोभ में आकर जीवात्माओं को जो उपदेश दिया जाता है, इससे जरा भी आत्मज्ञान उपलब्ध नहीं होता ।

बाह्य वैराग्य मात्र से आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता । अगाध गति प्राप्त करने के लिए विवेक दृष्टि आवश्यक है । करुणासागर इस ग्रंथ के अंत में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि अपनी इंद्रियों को संयम में रखकर ' अहंता ' को दूर करके शुद्ध चेतन अंश की गति प्राप्त करनी चाहिए । ' केवल किरतार ' ही इस जगत के अधिष्ठाता है ,और हम मनुष्य शरीर धारण करके इस जगत के जीवात्माओं के तारण के हेतु आये हुए हैं । प्रत्येक जीवात्मा की साँस में

1. 91. 2. 162.

जो अजपाजाप प्रणव चलता है उसका नियंता सत् कैवल ही है । इस तरह इस ग्रंथ का आशय स्वामीनारायण संप्रदाय की निंदा करना ही नहीं है, वरन् सत् कैवल संप्रदाय के सैद्धांतिक मूल्यों की स्थापना करना भी है ।[1]

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना सं. 1904 के वैशाख शुक्ल दशमी और शुक्रवार के दिन हुई थी ।[2]

पंचम श्वसंवेद

पंचम श्वसंवेद ग्रंथ के दो विभाग हैं - पद्य और गद्य । पद्य विभाग में कुल पाँच स्कंध हैं, जब कि गद्य में कुल नौ स्कंध हैं, अर्थात् इस ग्रंथ में कुल चौदह स्कंध है जिनमें एक से पाँच तक पद्य और छह से चौदह तक गद्य है । ` मंगलाचरण ` शब्द को ग्रंथ के प्रारंभ में स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ` मंगल ` अर्थात् अंशों का जीवन मुक्त होना और ` चरण ` अर्थात् ओहंग और सोहंग रूप से परम पद के चरणों में लीन होना । हिरण्यगर्भ अणु अणु में व्याप्त है और उसका अनुभव अंशों को किस प्रकार होता है, इसका मार्ग- उपासना पद्धति- इस ग्रंथ में बताया गया है ।

निज अंश और उसके पति कैवल की एकता करानेवाले परमगुरु ने जगत पर किस तरह प्रभाव डाला है इसका वर्णन भी इस ग्रंथ में है । शुद्ध गुरुपद की प्राप्ति और उसके बारे में निर्देशित लक्ष का, वैराट की अवस्थाओं में ओत-प्रोत अंतःकरण की क्रिया का और कैवल ने ऋटवृत्ति किस प्रकार उत्पन्न की इसका भी यथार्थ वर्णन इस ग्रंथ में है ।

इस ग्रंथ के पूर्वार्ध में विभिन्न तत्त्वों के मिश्रण और सामान्य देव तनु के पंचीकरण जब कि उत्तरार्ध में विशाल वैराट शरीर के पंचीकरण का वर्णन है । इस वर्णन के अंतर्गत ऋट महद देव-तनु का पंचीकरण, सामान्य देवतनु का पंचीकरण और स्थावर जंगम तनु के तत्त्वों के पोषण की चर्चा है ।

---

1. महामणि ग्रंथ प्रस्तावना, पृ. 10.
2. प्रस्तुत ग्रंथ का अंत भाग - दोहा 3.

ग्यारहवे स्कंध में स्थावर जाति के देह के पंचीकरण के वर्णन में विभिन्न तत्त्वों के विभागों की चेष्टाओं का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि स्थावर में श्रवण, सुगंध क्षुधा शीतोष्ण, विषय, मल विसर्जन आदि आकांक्षाओं का संबंध रजोगुण के साथ है । अहंकार से दस तत्त्व - पंचमहाभूत- पृथ्वी, जल, तेज, वायु और नभ - और पंचमात्रा- रूप, रस, शब्द स्पर्श और गंध की उत्पत्ति हुई है । सत्वगुण से पाँच अंतःकरण - मन, बुद्धि, चित्त अहंकार और नचिंत, और पाँच अवस्थाओं - जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्यय और उन्मनी का संबंध है ।

स्थावर जाति के देह के पंचीकरण में जंगम विपुविलास क्रिया देखावन पंचीकरण, मनुष्य लक्षण, कोष्टक और स्त्री पुरुष की देहों का बंधारण और पुत्र पुत्री के उत्पत्ति का संजोग, स्वभाव, गुण,प्रकृति आदि की चर्चा भी पंचीकरण में समाविष्ट है । इस प्रकार पंचीकरण की दृष्टि से पंचमश्वसंवेद महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है ।

पंचमश्वसंवेद ग्रंथ की प्रस्तावना में इस ग्रंथ के संपादक महंत शांतिदास जी ग्रंथ का परिचय देते हुए कहते हैं " पंचमश्व संवेद एटले शुं ? जे जे महापुरुषो थया ते ते महापुरुषो बाह्य वृत्तिनो त्याग करी अंतर्वृत्तिमां स्थिर थया, ते अंतर्वृत्तिनो जे लक्ष सोहंग प्रणव तेनुं नाम पंचमश्व संवेद छे । "

सकर्ता अद्वैत लक्षबोध पंचीकरण

इस ग्रंथ का मूल नाम ` सकर्ता अद्वैत लक्षबोध ` है । श्रोताओं के प्रश्न और करुणासागर के उत्तर के रूप में इस ग्रंथ की रचना की गई है । पंचमश्व-संवेद ग्रंथ के साथ इस ग्रंथ का संबंध है । केवल तत्त्व की अखंडता और सर्व-व्यापकता का निर्देश करते हुए कहा गया है कि राजा एक स्थल में स्थित होकर भी संपूर्ण राज्य का सूत्र संचालन करता है, प्रकाश पुंज सूर्य एक देश में स्थित रहकर भी संपूर्ण ब्रह्मांड में प्रकाश बिखेरता है, उसी प्रकार निज सकर्ता सत्

कैवल का प्रकाश एकदेशी होकर भी सर्वदेशी है ।

चौथे प्रकरण में परम विशेष अंश के आगमन का वर्णन किया गया है । श्वसंवेद का सिद्धान्त एकदेशी सकर्ता प्रकाशक होकर ब्रह्म ही इनका प्रकाशरूप है ।

पाँचवे प्रकरण में पंचीकरण और इन पाँच तत्त्वों के मिश्रण से उत्पन्न समग्र जगत की चर्चा की गई है ।

कैवल कर्ता के अलौकिक संकल्प से इस सृष्टि की रचना हुई है । इस समग्र कृत का प्रकार श्वसंवेद में परमगुरु ने दिखलाया है । परम अंश के द्वारा कर्ता ने इस गति का बयान किया है । इस परमगति और चर अचर देव विराट समेत समग्र ब्रह्मांड में जिस कर्ता का कृत है, उसकी चर्चा छट्ठे प्रकरण में की गई है ।

सातवे प्रकरण में सत्त्वगुण से पंचअवस्था और पंच अंतःकरण और उसके भिन्न विभागों की चर्चा की गई है । तीन गुण और तीन गण इन छह तत्त्वों की मुख्य क्रिया का भी वर्णन किया गया है ।

आठवे प्रकरण का प्रतिपाद्य यह है कि क्रियावृत्ति निर्माण करके सकर्ता ने भिन्न भिन्न प्रकार के असंख्य खेल किये हैं, फिर भी इस खेल को वेदांत के ब्रह्मज्ञानी देखते नहीं है और कहते हैं कि यह तो निर्गुण के बारे में भ्रांति है । प्रश्न यह है कि अद्वैत की प्रतीति हो जावे के बाद अपना कर्तव्य क्या है ? जिस तरह सकर्ता ने सकल तत्त्व उत्पन्न किये हैं, फिर भी इस प्रपंच को समझकर परमार्थ में ही उनकी गति करनी चाहिए । अपना निज स्वरूप और दिव्य स्वरूप होकर भी कैवल कर्ता अलग है । इनकी पहचान करनेके लिए ही पंचीकरण जानना आवश्यक है ।

सकृत परम प्रकाश मणिभाष्य

[सकर्ता भाष्य]

' सकृत भाष्य ' नामक इस गद्यात्मक ग्रंथ में सकर्ता सत् कैवल और उनके

अंशरूप जीवात्माओं के संबंध के बारे में करुणासागर ने अपने विचार व्यक्त किये हैं । `श्री करुणासागर नामके निर्णय ` संबंधी प्रथम भाग में करुणा और सागर इन दोनों नामों की चर्चा की गयी है । इस चर्चा में करुणासागर का वास्तविक अर्थ - आदि से लेकर वर्तमान काल तक - नामके साथ गुण भी विद्यमान हो ऐसा कहा गया है । किसी भी काल और किसी भी प्रसंगवश किसी भी प्रकार की अकरुणा न मिले इतना ही नहीं अकरुणता का होना ही सर्वथा असंभव है, उसीका नाम करुणा है । सागर की भाँति अनेक करुणाओं के समूह स्वरूप को करुणासागर कहते हैं । इन करुणाओं की विस्तृत व्याख्या, सद्गुरु सिद्धांत, निजकर्ता का अंश, और अंशों की शक्तियों की अर्थपूर्ण चर्चा पहले भाग में की गयी है ।

निज कर्ता के पाँच विशेषणों - आद्य, सकर्ता, स्वराज, करुणेश और कैवल की चर्चा द्वितीय भाग में की गयी है । निज कर्ता के स्वरूप की चर्चा करते हुए करुणासागर ने अग्नि और सूर्य में एकता नहीं है, यह समझाने के लिए सूर्यकांत नामक काल्पनिक मणि का दृष्टांत दिया है । जीव का किया हुआ कर्म स्वयं जीव को ही भुगतना पड़ता है, यही सत्य सर्वत्र व्याप्त है । अंश की एकता कर्ता के साथ नहीं है । कर्ता के स्वरूप की चर्चा करते हुए करुणासागर कहते हैं कि कर्ता का न रूप है, न वह अरूप है । कीट से प्रकृति तक की समस्त जीव अंशों की उत्पत्ति करनेवाला निजकर्ता स्वतः ही है । निज कर्ता को ही सर्व प्रथम आदि होने के कारण, और सकर्ता होने के कारण ` आद्य ` और ` सकर्ता ` के विशेषणों से संबोधित किया गया है । निजकर्ता का अपना ही स्वतंत्र ` स्वराज ` है, उसी कारण उसे ` स्वराज ` नाम से संबोधित किया जाता है । निजकर्ता ने स्वेच्छानुसार शुद्ध संकल्प से ही जगत में जीव अंशों को उत्पन्न किया है । दस इंद्रियाँ, चार अंतःकरण और षट् अविगत चिंतक पारस सहित बीस भाँतियों की समृद्धियों से सुसज्जित करने के बाद इस भव्य भवन को निजकर्ता ने अपने अंशों को निवास के लिए प्रदान किया है ।

उक्त विशेषणों को धारण करनेवाले केवल एक आद्य कर्ता ही है । प्रकृति-पुरुष युक्त अखिल ब्रह्मांड के अणु-अणु में व्याप्त एवं सभी पदार्थों का उद्गम स्थान होने से उसे ' अद्वैत निज कर्ता ' कहा गया है । इस सकर्ता के धाम के संबंध में तृतीय भाग में चर्चा की गयी है ।

करुणासागर कहते हैं कि शुष्क सिद्धांतों से केवल पदार्थके फल की प्राप्ति होती है, परन्तु उससे न तो कर्ता का वियोग मिट सकता है, और न परम पद की प्राप्ति ही हो सकती है । इन दोनों के लिए महान समर्थ परम गुरु ही हैं, और यही परम पद स्वयं कर्ता का धाम है । जब तक कर्ता के स्वरूप और परमधाम का पूर्णतया ज्ञान नहीं होता, तब तक सभी अंश देव-यज्ञ का फल यहीं पर ही भोगते रहते हैं । कर्ता के परम विशेष अंश परम गुरु द्वारा अपने निज कर्ता से मिलने का प्रयत्न करने का अनुरोध करुणासागर करते हैं ।

संस्कृत प्राकृत वाणी के सिद्धांत नामक चतुर्थ भाग में करुणासागर कहते हैं कि वाणी चाहे व्याकरण हो, या प्राकृत अथवा कोई भी वाणी हो, परन्तु जिस वाणी में निजकर्ता संबंधित महान सिद्धांत का वर्णन हो, उसी वाणी को ग्रहण करना सर्वथा वांछनीय है । वे कहते हैं कि नगर की किसी वेश्या की मधुर वाणी जैसे अखिल विश्व को मोहित करती है, फिर भी कोई व्यक्ति उसे अपनी घरवाली कहकर नहीं पुकार सकता, उसी प्रकार निज-कर्ता--पति की स्थापना से रहित वाणी द्वारा कर्ता को कौन अपना कहेगा , और कौन मोक्ष प्राप्त कर सकेगा ? किसान और मोची के दृष्टांतों के द्वारा यह कहा गया है कि जीवों को हमेशा ज्ञान के वितंडावाद से दूर रहकर निज कर्ता की भक्ति में लीन रहना चाहिए ।

पाँचवे भाग में जीव निरूपण की चर्चा की गयी है । विभिन्न दृष्टांतों के माध्यम से यह कहा गया है कि जड़ जीव गुरु द्वारा बताये गये किन उपायों से परम पद की प्राप्ति कर सकते हैं । एक दृष्टांत देते हुए कहा

गया है कि " समस्त चतुष्पदों में से जब किसी मदोन्मत्त हाथी को वश में करना होता है, तब एक बड़ा गढा खोदकर उसके ऊपर एक कागज़ की हथिनी खड़ी करके रखते हैं । पश्चात् जब उक्त मदोन्मत्त हाथी इस हथिनी को देखता है तो वह विषय में अंधा होकर हथिनी की ओर दौड़ता है । इस प्रकार हाथी गढ़े में गिरकर फँस जाता है । देखिए ! क्या यह हथिनी असली थी? नहीं - यह हथिनी तो बनावटी थी परन्तु हाथी तो असली हथिनी समझकर गढ़े में गिर गया । " [1] तात्पर्य यह कि इस संसार का आकर्षण नकली है , असली तो केवल गुरुकृपा द्वारा मोक्ष की प्राप्ति ही है ।

` राजनीति प्रदर्शन एवं परम गुरु का प्रतिपादन ` भाग में करुणा-सागर कहते हैं कि प्रजा को सुख प्राप्त कराने के लिए कूटनीति द्वारा अन्य निकट देशों पर विजय प्राप्त करके न्यायपूर्ण नीति का आचरण रखकर राजा समस्त प्रजा को सुख प्राप्त कराते हैं, लेकिन जब ऐसा नहीं होता, तब परमेश्वर को अपने महान अंश को भेजने और जगत को नियमपूर्वक चलाने में प्रयत्न करना पड़ता है । इस प्रकार करुणासागर ने अपने जमाने में राजा और प्रजा का संबंध प्रतिपादित करने के लिए राजनीति की चर्चा की है ।

सकर्ता भाष्य के दूसरे खण्ड में करुणासागर के पद हैं, जो आध्यात्म और काव्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । इसमें करुणासागर की रचनाओं के उपरांत इनके शिष्य नारणदास, अचरतबा, छोटम आदि की रचनाएँ भी हैं । ये पद प्रधान गुरुगद्दी सारसा से प्रकाशित एवं शीतलदास जी द्वारा संपादित ` भजन सागर ` और डभरा से प्रकाशित एवं शांतिदास जी द्वारा संपादित ` कैवल प्रकाश ` नामक ग्रंथों में भी संकलित हैं । मानव स्वयं की पहचान प्राप्त करके आत्मोन्नति कर पाये यही इन पदों का उद्देश्य है । कुछ प्रमुख पदों की विशेषताएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं ।

<u>प्रभात पद</u> - आत्मा- परमात्मा की एकता के स्वानुभव की अभिव्यक्ति ही इन पदों की विशेषता है । इन पदों में संसार की नश्वरता, माया का

1.सकर्त भाष्य, पृ. 71,72.

विलास और परमात्मा की सर्वव्यापकता का दर्शन कराया गया है । जीवात्मा माया के कारण अपना मूल रूप-शिवरूप- प्राप्त नहीं कर सकता ।

मंगल पद - इन पदों में मानव कल्याण की बात बताई गई है । मानव कल्याण करने में आनेवाले विघ्नों को दूर करके सत्य का साक्षात्कार करना ही इन पदों का लक्ष्य है ।

अविनाशी पद - इन पदों में अंश- अंशीकी एकता का लक्ष्य समझाया गया है । मानव जब नश्वर चीजों को पहचान जाता है, तब उसे अविनाशी तत्व का पता चलता है । अविनाशी तत्व की प्राप्ति ही ज्ञान की सीमा है -

अद्भुत ज्ञान हमारा हो संतो, अद्भुत ज्ञान हमारा,
कोई जाने जाननहारा, हो संतो, अद्भुत ज्ञान हमारा । [1]

ज्ञान के इस प्रदेश की पहचान कराते हुए करुणासागर कहते हैं --

जहाँ नहि कालझालकी शंका, हो संतो, देश हमारा बंका । [2]

अविनाशी पद की प्राप्ति से मन की स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं --

में अविनाशी उपासी, हो संतो, में अविनाशी उपासी,
गति अगम अगाध लखायी, हो संतो, में अविनाशी उपासी । [3]

इस प्रकार इन पदों में निजपति पद के साक्षात्कार का वर्णन है ।

ककका पद - इन पदों में ` क ` से लेकर ` ह ` तक के वर्णमाला के प्रथम अक्षरों का आधार लेकर तत्वचिंतन और भक्ति की अनुभव सिद्ध बातें बताई गई हैं । इन अक्षरों में इन्होंने परमात्मा प्राप्ति के लिए गुरु कृपा को अनिवार्य माना है । अपने गुरु की आज्ञा से करुणासागर ने ` ककका ` पदों की रचना की है ।

---

1. अविनाशी पद-3.
2. वही-4.
3. वही-1.

चरकीड़ा पद - इन पदों में मानव देह की तुलना चरखे से की गई है । मानव देह में श्वासोच्छ्वास की क्रिया से जो आवाज़ आती है, वही चरखे की आवाज है । चरखे की तरह इसमें विभिन्न चक्र हैं, जिनके सहारे अद्वैत की एकता का तार हरदम निकलता रहता है । इस चरखे की विशेष जानकारी के लिए गुरु से मिलना नितांत आवश्यक है ।

इन फुटकल पदों का वर्गीकरण विभिन्न दृष्टिकोण से किया जा सकता है । विषयवस्तु की दृष्टि से छह दर्शन देखालन पद, अविनाशी पद, प्रभात पद, मंगल पद, हिंडोला पद आदि पद हैं ।

काव्यस्वरूप की दृष्टि से आरती, तिथि, मास, थाल, गरबी, कक्को आदि पदों का समावेश होता है ।

राग की दृष्टि से काफी, आशावरी, गोडी, ख्याल आदि रागों-को ध्यान में रखकर पदों को इन रागों की संज्ञा दी गई है ।

छंदों की दृष्टि से इन पदों का वर्गीकरण उमंग, उल्लास, दोहा, भुजंगी आदि पदों में किया जा सकता है ।

इस प्रकार सकर्ता भाष्य का दूसरा खंड काव्यकला एवं आध्या-त्मिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

विज्ञान सकृत मणिदीप [छप्पा ग्रंथ]

विज्ञान सकृत मणिदीप ग्रंथ में छियानवे छप्पे हैं । इन छप्पों में स्वानुभव का अखूट भंडार है । करुणासागर ने मुमुक्षुओं के लिए विज्ञान रूप दीप आलोकित किया है, जिससे मुमुक्षुजन इस दीप के सहारे अपने जीवन में व्याप्त अज्ञान के अंधकार को दूर कर स्वस्वरूप को पहचान सके । उन्नीसवे छप्पे से लेकर इकतालीस तक के छप्पों में उन्होंने अपने पंचभूत देह की उत्पत्ति की कथा का संशय छेद किया है । वे अपने देह की उत्पत्ति के बारे में निर्भ्रांत होकर कहते हैं कि --

हमें हैं पुरुष अनाद्य उपाधि ते वरजीत वेशा । 19/।

इसी छप्पे की अंतिम पंक्ति में वे दोहराते हैं कि उनके शरीर की उत्पत्ति यौन संबंध से नहीं हुई है, उनका शरीर बिंदु से उत्पन्न नहीं हुआ है । इस सृष्टि के रूपात्मक और अरूपात्मक खेल को करुणासागर के अतिरिक्त कोई नहीं जानता । पालकी द्वीप के मुंजारन वन में ब्राह्मण दंपति को दिया हुआ अपना वचन निभाने के लिए वे जंबुद्वीप के भरतखंड में अपनी पालक माता को सहज रूप से संवत 1829 में महा शुक्ल द्वितीया के दिन बालक स्वरूप में प्राप्त हुए ।

इसके पश्चात् यह बताया गया है कि महर्षि व्यास और नारद जी के बीच आत्मज्ञान और कर्मकांड की प्रधानता पर शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें नारदजी ने कर्मकांड की अपेक्षा आत्मज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित किया । करुणासागर भी इसी अद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि जिस तरह कारण रूप वर्षा से वनस्पति अंकुरित एवं पल्लवित होती है, इसी तरह चेतन अंश से जड़ ` घाट ` सचेतन होकर माया के परिवार को चलाते हैं । जगत में व्याप्त माया का यह स्वरूप सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने से ही दिखाई देता है । हिलना-डुलना, चक्षुओं से देखना आदि जीवात्मा की ऐसी सभी प्रवृत्तियों में जो प्रवीणता है, यह माया का ही परिणाम है । जिस तरह प्रत्येक पुष्प में सुवास रहती है, उसी तरह प्रत्येक जीवात्मा में प्रीति को बढानेवाली माया रहती है । इस माया का स्वरूप-वर्णन करुणासागर ने इस ग्रंथ में सविस्तार दिया है । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- इन तीनों अवस्थाओं में अकल गतिरूप माया समस्त विश्व को आकुल-व्याकुल बनाकर डँस रही है । माया ही ईश्वर की शक्ति है । केवल कर्ता का चैतन्य अंश माया से अलग है । विश्व के सकल जीवात्माओं की देह पंचमहाभूतों से बनी हुई है । ये जीवात्मा माया-जाल से मुक्त होकर अजर, अखंड और अमर कैवल्यधाम में किस प्रकार पहुँच सकते हैं , इसका स्पष्ट और सविस्तार निर्देश करुणासागर ने किया है ।

सकर्ता कैवल का निवास स्थान परम तत्त्व परब्रह्म से भी पर है । सत् कैवल निर्लेप अर्थात् माया से रहित है । जीव निज-पद प्राप्त करने के बाद जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं ।

कैवल विलास

कैवल विलास ग्रंथ में कुल तैंतालीस अंग हैं । इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य यही है कि समस्त विश्व के सर्जनहार ` सत् कैवल ` [ब्रह्म] ही अद्वैतरूप में है फिर भी द्वैतरूप जगत में भी उसीका विलास है । विलास का तात्पर्य कण कण में उसीकी व्यापकता से है ।

पंचमहाभूतों का सम्मिलन मानव देह में किस प्रकार हुआ है, इसकी व्यापक चर्चा इस ग्रंथ में उपलब्ध है । इन पंचमहाभूतों से पर जो प्रणव है उसकी गति से इन तत्त्वों का संबंध है । ये पंचमहाभूत एक दूसरे के साथ हिरण्य गर्भरूप में स्थित हैं । करुणासागर का कथन है कि चौदह लोक रूप अखिल विश्व के स्थावर जंगम सब घटों में सोहंग ब्रह्म ही व्याप्त है । वे कहते हैं -

स्थावर जंगम विश्व चराचर ।
सोहंग ब्रह्म सबे घट सोई ।। 5/5

पिंड-ब्रह्मांड के पाँच तत्त्वों के पंचीकरण के संबंध में अपने विचार व्यक्त करने के बाद करुणासागर इस चिरंतन सत्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि : जिस प्रकार बीज में समग्र वृक्ष समाविष्ट है उसी प्रकार वृक्षरूप ब्रह्माण्ड में बीजरूप पिंड समाविष्ट है ।

देह के पंच तत्त्वों का संबंध देह की तीन अवस्थाओं से - जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति- और उसके चार रूपों से - स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण से भी है, और मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार से बने हुए अंतःकरण से भी इन पंचतत्त्वों का संबंध है ।

करुणासागर स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करते हैं कि जीव अपना चैतन्य

स्वरूप भूलकर भ्रांतिवश सत्यमार्ग से विचलित हो गया है ।[1]

ग्रंथ के अड़तीस, उनचालीस और चालीसवें अंगों में चार वेदों के रचयिता और वेदों के द्वादश महावाक्यों[2] - सद् चिद् और आनंद ऋग्वेद से, अहम् ब्रह्म और अस्मि यजुर्वेद से, तम् पद तदपद और असीपद सामवेद से तथा अयम्, अहो और निरमल अथर्ववेद से- के गूढार्थ को[3] स्पष्ट किया गया है ।

---

1. ताइते भूलत जीव परत विभ्रांति भाति ।
   पंथनी निशंक चित्त चली न शकतु है ।। 26/5
   लहे बिनु निजमति रहत बा इंद्रि जीती ।
   विकल विलाप ताप मनही भ्रमातु है ।। 26/6
2. सद् चिद् आनंद अहं ब्रह्म असीयं ।
   रघुयं यजुरं सजुय वदंती ।। 39/5
   तमो तदसीयं अयं अहो निरमलेयं ।
   अथर अथैयं सांम्यै लक्ष एती ।। 39/6
3. प्रथम ही रघुवेद सदचिद आनंद भेद ।
   सकल विधि निषेद पर पद धारे है ।। 40/2
   सद् सो तो बीज सर्व चिद सो हिरण्यभ्रम ।
   आनंद सफुरे गुन विश्वकु विस्तारे है ।। 40/3
   अहं सो तो कर्ता आप साक्षीवत ब्रह्म व्याप ।
   अस्मि अमाप थाप यजुर उच्चारे है ।। 40/4
   तम सो तो जीव सद आपा पर मानी रद ।
   तद ईश्वर क्रियाकारे असी अविकारे है ।। 40/5
   अयंग आतमा जम अहो कोहु कर्ता मम ।
   निर्मल निरालो सम अथर पोकारे है ।। 40/6

इस प्रकार ` कैवल विलास ` ग्रंथ में बताया गया है कि निर्दिष्ट जीव और ईश्वर स्वरूप में भिन्नता नहीं है, पर महदभक्ति प्राप्त करनेवाले विरल पुरुष ही कैवल पद-बोध समझ सकते हैं ।

मध्यकालीन सभी ज्ञानमार्गी और भक्तिमार्गी संतों ने जनमानस को जागृत करने के लिए लोकजीवन, लोकव्यवहार, लोकभाषा, लोकगीत, लोक-छंद आदि को अपनाया था । और इसी कारण वे उनके अति निकट ही नहीं पहुँचे अपितु उन्होंने उनके हृदयों में अपना स्थायी स्थान भी प्राप्त कर लिया । लोकजीवन की इसी निकटता के कारण ही मध्यकालीन सभी संत आज भी जनमानस में विराजमान हैं । करुणासागर भी मध्यकालीन ज्ञानमार्गी संतों में थे जिनका मूल उद्देश्य सरल जनबोली, छंद और लोकगीतों की धुनों को अपनाकर गहन रहस्यात्मक अनुभूतियों को जनसाधारण तक पहुँचाना था ।

अतएव करुणासागर ने भी तत्कालीन प्रचलित सभी छंदों एवं काव्य-रूपों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, जिनमें साखी, सबद, रमैनी, बारमासी, कक्का, छप्पा, मास, तिथि, आरती, मंगला, लावनी गज़ल , गरबा, गरबी, होली, हिंडोला पद, अविनाशी पद, थाल आदि प्रमुख हैं । इन सबका परिचय देना मात्र पिष्टपेषण होगा अतः यहाँ पर हम कुछ के नमूने सकर्ता भाष्य से प्रस्तुत कर रहे हैं ।

<u>तिथि पद</u> - इन पदों में प्रतिपदा से लेकर अमावस्य तक की तिथियों के सहारे दार्शनिक एवं आध्यात्मिक धरातल को स्पर्श करने का सफल प्रयत्न किया गया है -

तिथि 8

साधन अष्ट प्रकार के, मुद्रा पंच पहेचान ।
ताते साधन आनंद है, पूरणपद निरवाण ।।

चरखीड़ा पद- इन पदों में मानवदेह की तुलना चरखे से की गई है -

पद 2

मेरा अंत लगा चरखा से कातुं सांजसवेरा ।
कहे कुवेर ए मर्म चरखाका, जाने जाननहारा ।।

मंगलपद- इन पदों में मानव-जीवन के मंगल की कामना की गई है । --

पद 2

मन मंगल आनंदरूप भया तब जानही ।
जेनो शब्द विवेक विचार संत परमाणही ।।

अविनाशी पद - इन पदों में अंश- अंशी की एकता का लक्ष्य समझाया गया है -

पद 4

देश हमारा वंका हो संतो, देश हमारा वंका ।
जांहां नहि कालझाल की शंका, हो संतो देश हमारा वंका ।।

इस प्रकार हमने यह लक्ष्य किया कि करुणासागर ने लोकजीवन-व्यवहारों को अपनाकर ज्ञान-भक्ति को जनसुलभ बनाया । अब हम उनकी दार्शनिक विचारधारा पर विचार करेंगे ।